

ओ३म्

सत्यानन्द कर्मार्क : RAJHIN/2015/60530

महर्षि

दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : २ अंक : २० १ अगस्त २०१६ जोधपुर (राज.) पृ.: ३६ मूल्य १५० र वार्षिक



महर्षि दयानन्द सरस्वती

ओ३म् में ही विश्वास

ओ३म् में ही शान्ति

ओ३म् में ही आस्था

ओ३म् में ही संसार

ओ३म्

ओ३म् में ही शक्ति

ओ३म् से ही होती है अच्छे दिन की शुरुआत



ओ३म्

नेपाल के काठमाण्डू शहर में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन

(20.10.2016 से 22.10.2016 तक)



1. के अवसर पर धार्मिक एवं रमणीय स्थानों की स्लीपर कोच बस द्वारा यात्रा।
1. काठमाण्डू (5 दिन) पोखरा (2 दिन) में डिलक्स होटल में रूम सुविधा दी जायेगी।

काठमाण्डू, पोखरा, अयोध्या, वाराणसी, ईलाहाबाद, आगरा

सर्वधर्म प्रेमी सज्जनों को सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि डिलक्स बसों द्वारा निम्न धार्मिक व रमणीय स्थानों की यात्रा का आयोजन किया गया है। जिन भक्तजनों को इस शुभ धार्मिक यात्रा का लाभ उठाना हो वे सज्जन 25 प्रतिशत देकर अपनी सीट आज ही बुक करवा लें। सीट नम्बर से ही रिजर्व कि जाती है। यात्रा प्रस्थान जोधपुर से सुबह 7.00 बजे होगी।

- ★ जोधपुर - दयानन्द स्मृति भवन, रातानाडा से प्रस्थान
- ★ अयोध्या - राम जन्म भूमि, सरयु स्नान, हनुमानगडी, कणक भवन
- ★ काठमाण्डू (नेपाल विदेश यात्रा) अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन, पशुपतिनाथ महादेव व अन्य साईड सीन
- ★ पोखरा - डेविस फाल, गुप्तेश्वर महादेव, बिन्दया वासिनी माता मन्दिर, वराई माता मन्दिर, सेती गन्दकी नदी, महेन्द्र गुफा
- ★ गोरखपुर - गोरखनाथ जी के दर्शन, ★ बनारस - काशी विश्वनाथ ज्योतिर्लिंग, संकट मोचन, तुलसी मानस मन्दिर, दुर्गा माता मन्दिर
- ★ ईलाहाबाद - त्रिवेणी स्नान, अशोक किला, ★ आगरा - ताजमहल, लाल किला, दयालबाग
- ★ जोधपुर

यात्रा का विवरण :

- 14.10.2016- जोधपुर से यात्रा प्रस्थान
- 15.10.2016- इलाहाबाद त्रिवेणी संगम स्नान
- 16.10.2016- वाराणसी
- 17.10.2016- गोरखपुर मन्दिर, पोखरा
- 18.10.2016- पोखरा (पोखरा साईड सीन व शहर भ्रमण)
- काठमाण्डू अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, साईड सीन व शहर भ्रमण
(19.10.2016 से 23.10.2016 तक)

24.10.2016- अयोध्या

25.10.2016- आगरा

26.10.2016- जोधपुर

स्लीपर कोच बस

सीट (2x2 पुश बेक) - 10000/-

अपर स्लीपर - 12000/-

डाउन स्लीपर - 13000/-

किराया प्रति यात्री

चाय, नाश्ता, भोजन,
आवास सुविधा सहित

यात्रा अवधि : 13 दिन

भोजन: सुबह चाय, दोनों समय भोजन (सब्जी, अचार, रोटी या पूड़ी) दी जायेगी। पानी की बोतल, केम्पर एवं पहले दिन का भात सुबह का भोजन साथ लावे।

ठहरने की व्यवस्था- सभी यात्रियों को धर्मशाला में ठहरने की सुविधा दी जायेगी। जो यात्री अलग से रूम में ठहरना चाहें तो रूम चार्ज स्वयं को देना होगा।

नोट: 1. संचालक का पुराना अनुभव होने के कारण यात्रियों को किसी प्रकार की परेशानी नहीं होगी। 2. संचालक द्वारा निश्चित समय में यात्रियों को धार्मिक व रमणीय स्थान देखकर वापिस बस पर आना होगा। 3. यात्रियों को शेष किराया गाड़ी रवाना होने के तीन दिन पूर्व पूर्ण राशि जमा करानी होगी, अगर किसी यात्री की पूर्ण राशि नहीं आती है तो उसे दी गयी सीट अन्य यात्री को देने का पूर्ण अधिकार संचालक का होगा। संचालक पूर्ण राशि प्राप्त न होने पर सीट को रद्द करने का अधिकार रखता है। 4. नाव (बोट) किराया, प्रवेश शुल्क व जहाँ पर दूसरी बस/टेक्सी जायेगी उसका किराया यात्री स्वयं देगा। 5. तीन साल से आठ साल तक के बच्चों का आधा टिकट लगेगा और उन्हें बैठने हेतु सीट नहीं मिलेगी। किसी भी धार्मिक व दर्शनीय स्थानों में आकस्मिक आपदा आने पर जैसे अवकाश, कर्फ्यू, दंगा, रास्ता बंद इत्यादि होने पर उस स्थान की यात्रा स्थगित कर दी जायेगी, आगे की यात्रा जारी रहेगी एवं संचालक को प्रोग्राम में रद्दोबदल करने का पूर्ण अधिकार होगा।

सम्पर्क सूत्र: दयानन्द स्मृति भवन, रातानाडा, जोधपुर

नरपतसिंह गहलोत आर्य - मोबाइल: 94144-75031

online booking

www.shrimahadevtravels.com



कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद १।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा समस्त लिखित साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों व सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार स्थापना व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति
भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि
दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : २	अंक : १६
दयानन्दाशब्द : १६२	
विक्रम संवत् : श्रावण	
कलि संवत् ५११७	
सृष्टि संवत् : १,६६,०८,५३,११७	
मार्गदर्शक :	
पं. अत्यानन्दजी वेदवागीश	
प्रकाशक :	
महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जसवन्त कॉलेज के पास, जोधपुर ३४२००१	
अभ्यादक मण्डल :	
पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश, नोएडा	
प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर	
डॉ. धर्मवीर, अजमेर	
डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार	
डॉ. वेदपालजी, मेरठ	
पं. रामनारायण शास्त्री, सिरौही	
आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा	
लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है । किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र जोधपुर ही होगा ।	
mail i.d.: info@dayanandsmritinyas.org. www.dayanadsmritinyas.org.	
वार्षिक शुल्क : १५० रुपये	
आजीवन शुल्क : ११०० रुपये (१५वर्ष)	

अनुक्रमणिका

क्या	कहाँ
१. ईश्वर-स्तुति....	४
२. पूजा	५
३. वेद मन्त्र	६
४. स्वामी दयानन्द जीवन चरित्र...	८
५. आओ अपने घर चले.....	१२
६. सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे.....	१६
७. ऋषि दयानन्द प्रवास.....	१६
८. आर्यसमाज का इतिहास.....	२३
९. क्या महाभारत युद्ध रोका नहीं.....	२६
१०. श्रावणी पर्व कैसे मनाएं ?	२६
११. दयानन्द बावनी....	३१
१२. स्मृति भवन न्यास : सम्मेलन सूचना	३३
१३. पाणिनि नगर : वृष्टि यज्ञ व वार्षिकोत्सव	३४

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास
बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646
IFSC BARB0JODHPU

यह पांचवा अक्षर जीरो है

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश, अगस्त २०१६ पृष्ठ ३

ईश्वर-स्तुति

प्रार्थना

न यस्य देवा देवता न मर्ता, आपश्च न शवसो अन्तमापुः ।

स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्षमो दिवश्च, मरूत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ।।३२।।

-ऋ० १।७।१०।१५

व्याख्यान- हे अनन्तबल! “न यस्य” जिस आपका और आपके बलादि सामर्थ्य का “देवाः” इन्द्रिय “देवताः” विद्वान्, सूर्यादि तथा बुद्ध्यादि “न मर्ताः” साधारण मनुष्य “आपश्चन” आप, प्राण, वायु, समुद्र इत्यादि सब “शवसः” आपके बल का “अन्तम् आपुः” पार कभी नहीं पा सकते, किन्तु “सः प्ररिक्वा” वह आप प्रकृष्टता से इनमें व्यापक होके इनसे अतिरिक्त (विलक्षण), भिन्न ही परिपूर्ण हो रहे हैं। जो “मरूत्वान्” अत्यन्त बलवान् “इन्द्रः” परमात्मा “त्वक्षसा” शत्रुओं के बल के छेदक बल से “क्षमः” पृथिवी को “दिवश्च” स्वर्ग को धारण करता है, सो “इन्द्रः” परमात्मा “ऊती” हमारी रक्षा के लिए “भवतु” तत्पर हो ।।३२।।

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।

स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ।।३३।।

-ऋ० १।७।७।१।।

व्याख्यान- हे “जातवेदः” परब्रह्मन्! आप जातवेद हो, उत्पन्नमात्र सब जगत् को जानने वाले हो, सर्वत्र प्राप्त हो। जो विद्वानों से ज्ञात सबमें विद्यमान (जात अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो, इससे आपका नाम जातवेद है) उन आपके लिए “वयम्, सोमं, सुनवाम” जितने सोम-प्रिय-गुणविशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब आपके ही लिये हैं, सो आप हे कृपालो! “अरातीयतः” दुष्ट शत्रु जो हम धर्मात्माओं का विराधी उसके “वेदः” धनैश्वर्यादि का “निदहाति” नित्य दहन करो, जिससे वह दुष्टता को छोड़के श्रेष्ठता को स्वीकार करे तथा “नः” हमको “दुर्गाणि, विश्वा” सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से “पर्षदति” पार करके आप नित्य सुख को प्राप्त करो। “नावेव, सिन्धुम्” जैसे अति कठिन नदी वा समुद्र से पार होने के लिए नौका होती है “दुरितात्यग्निः” वैसे ही हमको अत्यन्त पापजनित सब पीड़ाओं से पृथक् (भिन्न) करके संसार में और मुक्ति में भी परमसुख को शीघ्र प्राप्त करो ।।३३।।

-आर्याभिविनय से

पूजा

-डॉ. रामनाथ वेदालंकार

उत ब्रुवन्तु नो निदो, निरन्यतश्चिदारत ।

दधाना इन्द्र इद्दुवः ।। ऋग् १. ४. ५.

ऋषिः मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता इन्द्रः । छन्दः गायत्री ।

(उत) और यदि (नः) हमारे (निदः) निन्दक (ब्रुवन्तु) कहें [कि इस स्थान से तो निकल ही जाओ] (अन्यतः चित्) अन्य स्थानों से भी (निर्आरत) बाहर निकल जाओ [तो भी हम] (इन्द्रे इत्) परमैश्वर्यशाली परमेश्वर में ही (दुवः) पूजा को (दधानाः) धारण करने वाले [हों]

हमने आज से ईश्वर-भक्ति का व्रत लिया है, हम परमैश्वर्यशाली इन्द्र-प्रभु के पुजारी हुए हैं। पर न जाने क्यों हमारी ईश्वर-पूजा को कुछ नास्तिक लोग पसन्द नहीं करते। वे चाहते हैं कि हम भी उन जैसे नास्तिक हो जायें; हम भी उनके दल में सम्मिलित होकर प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करें; चोरी करें, सज्जनों को धोखा दें, हिंसा-उपद्रव मचायें। हमारा प्रातः-सायं ध्यान में बैठना उन्हें नहीं रूचता। वे हम पर ताने कसते हैं। कहते हैं- तुम वंचक हो, तुम धूर्त हो, तुम यह दिखाना चाहते हो कि हम बड़े सन्त हैं, और इस प्रकार समाज को अपनी ओर आकृष्ट करके भोली जनता से अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हो। उनके इस व्यंग्य-बातों से विद्ध होकर हमारे कई साथी, जिन्होंने हमारे साथ प्रभु-पूजा का व्रत लिया था, पूजा छोड़ चुके हैं। पर, हे प्रभु! हमें तो तुम ऐसा बल दो कि हमारे निन्दक लोग हमारी कितनी ही निन्दा करें, हमें कितना ही डरायें-धमकायें, हमें कितना ही कष्ट दें, पर हम तुम्हारी पूजा न छोड़ें।

हम जानते हैं कि इस प्रकार निन्दकों की करतूतों को सहना आसान नहीं है। जब बहुत से निन्दक लोग मिलकर ताली पीटते हैं, फब्तियाँ कसते हैं, सामान जला देते हैं, तब भी सचाई पर अटल रहना विरलों का ही कार्य होता है। पर हमारी इच्छा यही है कि ऐसे समयों में भी हम प्रभु-पूजा में अटल रहें। यदि हमारे निन्दक लोग कहें कि तुम इस घर से निकल जाओ, इस गाँव से निकल जाओ, इस नगर से निकल जाओ, इस देश से निकल जाओ, तो भी हम न घबरायें। कोई शत्रु हमारे शरीर से पत्थर बाँधकर हमें समुद्र में फेंकने को तैयार हो जाए, आग में डालने को तैयार हो जाए, पहाड़ की चोटी से गिराने को उद्यत हो जाए, तो भी हम ईश्वर-पूजा को न छोड़ें। ध्रुव और प्रह्लाद के समान ईश्वर-भक्त हों। हमारी ईश्वर-भक्ति को देखकर एक बार शत्रु भी हमारी प्रशंसा कर उठे, सामान्य मनुष्यों का तों कहना ही क्या है!

यदि हमारा ईश्वर-विश्वास ऐसा दृढ़ होगा तो प्रभु की कृपा हमें प्राप्त होगी। निन्दकों की निन्दाओं और शत्रुओं की बाधाओं की काली घटाएँ स्वयं हमारे ऊपर से छँटती चलेंगी। परमैश्वर्यवान् इन्द्र-प्रभु हम पर अपने दिव्य ऐश्वर्य की वर्षा करेंगे।

-वेद-मञ्जरी से

चतुर्थवेद शतकम से

वेद-मन्त्र

श्रेष्ठधेन-याचना

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।

वर्षिष्ठमूतये भर ।। -१।८।१।ऋग् ।

पदार्थ:- हे (इन्द्र) परमेश्वर! आप कृपा करके हमारी (ऊतये) रक्षा, पुष्टि और सब सुखों की प्राप्ति के लिए (वर्षिष्ठम्) जो अच्छी प्रकार वृद्धि करनेवाला, (सानसिम्) निरन्तर सेवन के योग्य, (सदासहम्) दुष्ट शत्रु तथा हानि वा दुःखों के सहने का मुख्य हेतु (सजित्वानम्) और तुल्य शत्रुओं का जिताने-वाला (रयिम्) धन है, उसको (आभर) अच्छी प्रकार दीजिए ।

भावार्थ:- सब मनुष्यों को सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी ईश्वर का आश्रय लेकर अपने पूर्ण पुरुषार्थ के साथ चक्रवर्ती राज्य के आनन्द को बढ़ानेवाली विद्या की उन्नति, सुवर्ण आदि धन और सेना आदि बल सब प्रकार से रखने चाहिएँ, जिससे अपने-आपको और सब प्राणियों को सुख हों ।

निर्भय होकर यज्ञ कर

मा भेर्मा संविकथाऽतमेरूर्यज्ञोऽतमेरूर्यजमानस्य

प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ।।

-१।२३।यजु.।

पदार्थ:- हे विद्वान् पुरुषो! तुम (अतमेरूः) श्रद्धालु होकर (यजमानस्य) यजमान के यज्ञानुष्ठान से (मा भेः) भय मत करो और उससे (मा संविकथा) मत चलायमान हो ओ । इस प्रकार (यज्ञः) यज्ञ करते हुए तुमको उत्तम-से-उत्तम (अतमेरूः) ग्लानि-रहित, श्रद्धावान् (प्रजा) सन्तान (भूयात्) प्राप्त हो और मैं (त्वा) भौतिक अग्नि को (एकताय, द्विताय, त्रिताय) उक्त गुणयुक्त तथा सत्य सुख के लिए वायु तथा वृष्टि-जल की शुद्धि तथा अग्निकर्म और हवि के होने के लिए (संयौमि) निश्चल करता हूँ ।

भावार्थ- ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य यज्ञ, सत्याचार और विद्या के ग्रहण से डरना वा चलायमान कभी न होना चाहिए, क्योंकि मनुष्य को अच्छे-अच्छे कामों से उत्तम-उत्तम सन्तान, विविध प्रकार के शारीरिक, वाचिक और मानसिक निश्चल सुख प्राप्त हो सकते हैं ।

हृदय -कमल में दर्शन

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।

मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ।।१।। साम.।।

पदार्थ:-(अग्ने)हे ज्ञानप्रद परमात्मान्! (त्वाम्) तुझको (अथर्वा) ज्ञानी पुरुषः(मूर्ध्नः) मस्तिष्क से और (विश्वस्य) सबके (वाघतः) वाहक (पुष्करात्) हृदय-कमल (अधि) में (निरमन्थत) आविर्भूत=प्रत्यक्ष करता है।

भावार्थ:- परमात्मा ज्ञानियों के हृदय में प्रकट होता है, परन्तु सामान्यतया नहीं अपितु मस्तिष्क से अर्थात् विचार के बल से। इस मन्त्र में हृदय को सबका वाहन बताया गया है। यर्थाथ में हृदय के ज्ञान बिना प्राणिमात्र जड़ है और हिल-डुल सकने को असमर्थ है, इसलिए हृदय ही सबका वाहन है।

मधुरता

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।

वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः।।

-१।३४।३। अथर्व.।।

पदार्थ:- (मे) मेरा (निक्रमणम्) पास आना (मधुमत्) बहुत ज्ञानवाला वा रस में भरा हुआ और (मे) मेरा (परायणम्) बाहर जाना (मधुमत्) बहुत ज्ञानवाला वा रस-भरा हो। (वाचा) वाणी से मैं (मधुमत्) बहुत ज्ञानवाला वा रसयुक्त (वदामि) बोलूँ और मैं (मधुसंदृशः) ज्ञानरूपवाला, मधुररूपवाला (भूयासम्) रहूँ।

भावार्थ:- जो मनुष्य घर, सभा, राजद्वार, देश, परदेश आदि में आने-जाने, निरीक्षण-परीक्षण, अभ्यास आदि समस्त चेष्टाओं और वाणी से बोलने, अर्थात् शुभ गुणों के ग्रहण और उपदेश करने में (मधुमान्) ज्ञानवान् वा रस से भरे, अर्थात् प्रेम में मग्न होते हैं, वे ही महात्मा (मधुसन्दृशः) रसीले रूपवाले, अर्थात् संसारभर में शुभकर्मों होकर उपकार करते हैं।

लायन्स क्लब जोधपुर के तत्वाधान में वृक्षारोपण

महर्षि दयानन्द स्मृति भवन न्यास जोधपुर में लायन्स क्लब के तत्वाधान में वृक्षारोपण का कार्यक्रम कर प्रदुषण से निजात पाने एवं मनुष्य के जन-जीवन को सुखी एवं समृद्ध बनाने की प्रेरणा ली। इस सुअवसर पर न्यास के मन्त्री आर्य श्रीकिशनलालजी गहलोत एवं कई महानुभावों ने अपने विचार प्रकट कर पौधों को गोद लेने एवं इनकी देख-रेख व रक्षा हेतु संकल्प लिया।

नोट:-फाईल चित्र अन्तिम पृष्ठ पर देखें।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र

-पं.लक्ष्मणजी आर्योपदेशक, राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

योगियों की खोज

संवत् 1903 से 1916 पर्यन्त

मूलशंकर अब अहमदाबाद होता हुआ बड़ोदरा में आकर ठहर गया। ब्रह्मचारियों तथा संन्यासियों से वेदान्त विषय पर बातें हुई। ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारियों व संन्यासियों ने उसे जीव ब्रह्म की एकता का निश्चय करवाया। यहाँ बनारस की रहने वाली एक बाई से सुना कि नर्मदा के तट पर एक बड़ी सभा होने वाली है। यह वहाँ पहुँचा। एक सच्चिदानन्द परमहंस से शास्त्रों के विभिन्न शास्त्रीय विषयों पर वार्त्तालाप हुआ। परमहंस जी ने पता दिया कि आजकल नर्मदा तट पर स्थित चाणोद कन्याली में बड़े उत्तम विद्वान्, ब्रह्मचारी एवं संन्यासियों की मण्डली रहती है। यह जानकारी पाकर आप वहाँ पहुँच गये। यहाँ आकर प्रथम बार ही सच्चे दीक्षित विद्वानों तथा चिदाश्रम आदि संन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों, पण्डितों से भेंट करके अत्यन्त प्रसन्नता हुई विशेषरूप से परमानन्द नामी परमहंस का शिष्य बनकर कई मास तक उनके साथ रहा। उनके पास रहकर वेदान्त सार, आर्या हरिमीडेतोटक, वेदान्त परिभाषा आदि तथा दर्शन विषयक कई पुस्तकें पढ़ी।

संन्यास-दीक्षा- उस काल में मूलशंकर ने यह अनुभव किया कि स्वयं भोजन बनाने पकाने में विद्या-प्राप्ति के कार्य में बड़ी विघ्न बाधा होती है साथ ही परिवार वाले नाम से प्रसिद्ध रहने के कारण यह आशंका लगी रहती थी कि किसी समय घर वालों द्वारा पकड़ा जाऊँगा। सारी पढ़ाई छूट जावेगी। मन में विचार आया कि यदि संन्यास आश्रम में प्रविष्ट हो जाऊँ तो दोनों संकट टल जाएँगे। अपने एक दक्षिणी मित्र से चिदाश्रम स्वामी को संन्यास देने के लिए कहलवाया। परन्तु महाराष्ट्रीय संन्यासी ने जो परम दीक्षित था उसने संन्यास देने से स्पष्ट इनकार कर दिया। उसने कहा कि मैं इस छोटी आयु से नवयुवक को संन्यास नहीं देता। मूलशंकर अपने निश्चय पर अडिग था। उसने इसी चिन्ता में नर्मदा तट पर डेढ़ वर्ष बिता दिया। जब वह चौबीस वर्ष और दो मास का हो गया तो दक्षिण से एक दण्डी स्वामी तथा एक ब्रह्मचारी आये। इन्होंने चाणोद ग्राम से दो मील की दूरी पर वन में एक मकान में डेरा किया। मूलशंकर अपने दक्षिणी मित्र सहित इनके पास गया। वार्त्तालाप से पता चला कि वे विद्या में प्रवीण हैं। दक्षिणी पण्डित ने बड़ी नम्रता से उन्हें कहा कि यह ब्रह्मचारी बड़ा ही सुशील तथा ब्रह्म विद्या सीखने का अभिलाषी है। भोजन बनाने के बखेड़े में विद्या-प्राप्ति में बड़ी बाधा पड़ती है। आप इसे चौथे प्रकार का संन्यास दे दीजिये। संन्यासी पूर्णानन्द ने भी नवयौवनता का विचार करते हुए संन्यास देने से संकोच किया। उन्होंने कहा कि यह नवयुवक है। बहुत कुछ कहने सुनने पर कहा कि हम महाराष्ट्रीय हैं। इसे किसी गुजराती संन्यासी से संन्यास

दीक्षा दिलवाएँ। दक्षिणी महाशय ने कहा कि महाराष्ट्रीय सन्यासी तो गौड़ों को भी सन्यास देते हैं जो पंच द्रविड़ों से बाहर हैं। यह ब्रह्मचारी तो गुर्जर अर्थात् गुजराती है। तब वे मान गये और मूलशंकर को सन्यास देकर दयानन्द सरस्वती नाम दिया। स्वामी पूर्णानन्द जी श्री शंकराचार्य के श्रृङ्गेरी मठ से चलकर द्वारिका जाने की इच्छा से आये थे। अतः नये शिष्य को कुछ समय तक ब्रह्म विद्या के पुस्तक पढ़ाकर द्वारिका के लिए प्रस्थान कर गये। मूलशंकर अथवा शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी अथवा अब यह कहिये कि स्वामी दयानन्द व्यासाश्रम चले गये। वहाँ स्वामी योगानन्द नाम के एक सन्यासी रहते थे। वे योग विद्या में प्रवीण माने जाते थे। वहाँ योग विद्या सीखने की अभिलाषा लेकर गये। यहाँ रहकर योग विद्या विषयक सब आरम्भिक ग्रन्थ पढ़कर छिन्नौड़ नगर को चल दिये। कृष्ण शास्त्री चित्पावन ब्राह्मण से व्याकरण का अभ्यास करके चाणोद कन्याली में वापस आ गये और कुछ समय वहीं ठहर कर राजगुरु से वेद पढ़े। फिर कुछ दिन ज्वालानन्द पुरी तथा शिवानन्द गिरि दो योगी मिले जिनके साथ योग का साधन तथा योग शास्त्र पर चर्चा निरन्तर होती रही। दोनों योगी अहमदाबाद चले गये। वे कह गये, दयानन्द जी! आप एक मास के पश्चात् वहाँ आ जावें तथा हमें नदी के ऊपर दूधेश्वर महादेव में मिलें। तब आपको वहाँ योग साधना की सूक्ष्म बातें तथा उसकी सब विधियाँ भली प्रकार से समझा देंगे। ऐसा ही हुआ। स्वामी दयानन्द वहाँ पहुँचे। योग विद्या की सब सूक्ष्म बातें तथा साधन क्रिया जान कर निहाल हो गये। तत्पश्चात् चर्चा सुन सुनकर स्वामी जी योगियों की खोज में आबू पर्वत राजस्थान पहुँचे। वहाँ जाकर उनकी खोज करते करते अर्बुदा भवानी गिरी नामक शिखर तथा अन्य स्थानों पर उनसे भी अधिक विद्वान् ज्ञानी योगिराजों से जाकर मिलें। उनसे भी विशेष योगसाधना के सूक्ष्म तत्त्वों को प्राप्त किया।

सम्बत् 1911 विक्रमी तक इसी प्रकार विभिन्न स्थानों पर विचरण करते हुए स्वामी जी योगियों से विद्वानों से विद्या तथा शारीरिक व आत्मोन्नति के साधन प्राप्त करते रहे। फिर तीस वर्ष की आयु होने पर ग्यारह अप्रैल सन् 1855 (सम्बत् 1912 वि.) हरिद्वार कुम्भ पर पधारे। यहाँ योगी, तपस्वी, साधु सन्यासियों से भेंट होती रही। फिर चण्डी पर्वत के जंगल में योगाभ्यास करते रहे। मेले के पश्चात् आप ऋषिकेश चले गये। योगि महात्माओं से योग की रीति सीखते रहे। फिर कुछ दिन अकेले भी रहे। एक ब्रह्मचारी तथा दो पर्वतीय साधु भी उनसे और आ मिले। यहाँ सब मिलकर टिहरी चले गये। टिहरी साधुओं तथा पण्डितों से भरपूर व प्रसिद्ध था। एक दिन यहाँ एक ब्राह्मण ने स्वामी जी को भोजन का निमन्त्रण दिया। उसका बुलावा आने पर आप एक ब्रह्मचारी के साथ उसके यहाँ पहुँचे। वहाँ क्या देखा कि एक पण्डित मांस को काटता व बनाता है। आगे होकर बहुत से पण्डितों को मांस तथा अस्थियों के ढेर तथा पशुओं के भुने हुए सिरों पर कार्य करते पाया। इतने में ही गृहस्वामी ने अत्यन्त प्रसन्नता एवं सौहार्द से भीतर आने को कहा। स्वामी जी महाराज यह कहते हुए वहाँ से चले आये कि आप अपना कार्य किये जाइये। मेरे लिए कुछ कष्ट न कीजिये।

थोड़ी देर के पश्चात् वह मांसाहारी पण्डित स्वामी जी को बुलाने आया और कहा कि सब उत्तम

भोजन आप ही के लिए बनाये गये हैं। स्वामी जी ने कहा, यह सब व्यर्थ है। तुम मांस भक्षण करते हो परन्तु मेरे योग्य केवल फलादि हैं। मांस के तो दर्शन मात्र से मुझे रोग हो जाता है। यदि आपको मेरा न्यौता करना ही है तो कुछ अन्न व फल आदि भिजवा दीजिये। मेरा ब्रह्मचारी भोजन बना लेगा। पण्डित ने इसे स्वीकार किया और लज्जित होकर अपने घर लौट गया।

स्वामी जी कुछ दिन वहीं ठहरे और उस पण्डित से कुछ पुस्तकों तथा ग्रन्थों के बारे जानकारी लेते रहे। यह पता भी करते रहे कि उस नगर में ये ग्रन्थ कहाँ से मिलेंगे। पण्डित से संस्कृत व्याकरण, कोश, ज्योतिष, तन्त्र आदि पुस्तकों के नाम लिये। इनमें से स्वामी जी ने तन्त्र ग्रन्थ पहले नहीं देखे थे। वे पण्डित से मंगवाये। उन्हें खोलते ही स्वामी जी की दृष्टि अत्यन्त अश्लील व भद्दे वाक्यों पर पड़ी। स्वामी जी का हृदय काँप उठा। उसमें लिखा था कि माँ, बहन, बेटी, चूहड़ी, चमारी आदि से भोग करना, मद्य, मांस, मीन, मदिरा, मैथुन, और ब्राह्मण से चांडाल तक एक ही स्थान पर भोजन करना सब कुछ उचित है। इन पांच मकारों से अर्थात् मद्य, मांस आदि से मुक्ति मिलती है इत्यादि।

टिहरी से श्रीनगर आकर स्वामी जी केदारघाट पर एक मन्दिर में ठहरे। यहाँ पण्डितों से जब कभी वादानुवाद होता तो वे इन्हीं तन्त्र ग्रन्थों से हरा देते थे। यहाँ स्वामी जी महाराज की गंगागिरि नामक एक साधु से भेंट हुई। यह एक अच्छा विद्वान् था अतः दोनों की अच्छी मैत्री हो गई। हर समय योग विद्या तथा अन्य उत्तम-उत्तम विषयों पर दोनों का परस्पर वार्त्तालाप होता रहता था। दोनों एक दूसरे की संगति करके प्रसन्न थे। दो मास से ऊपर समय तक दोनों इकट्ठे रहे।

तत्पश्चात् पतझड़ के आरम्भ अपने साथियों (ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधुओं) सहित केदारघाट से चल पड़े। रूद्रप्रयाग आदि स्थानों से होकर अगस्त मुनि की समाधि पर पहुँचे। यहाँ से शिवपुरी नाम के पर्वत पर पहुँचे। जैनी लोग यहाँ मुक्ति का मिलना मानते हैं। यहाँ शरद् ऋतु के चार मास बिताकर अपने साथियों-ब्रह्मचारी तथा दोनों साधुओं से पृथक् होकर एकाकी बिना खटके केदारघाट को लौट आये। यहाँ बहुत थोड़ा समय निवास करके गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड और भीमगुंफा होते हुए त्रियुगीनारायण के मन्दिर में पहुँचे। थोड़े दिनों में आप केदारघाट लौट आये। कुछ समय के यहाँ के निवास काल से स्वामी जी पर्वतीय लोगों की करतूतों से भली भाँति परिचित हो गये। उनके मन में निकटवर्ती पर्वतों के भ्रमण की इच्छा हुई। यह पर्वत सदा हिमाच्छादित रहते हैं। जिन महात्माओं के समाचार आप सुनत रहते थे परन्तु भेंट नहीं हो सकी थी, उनके दर्शन करने की आपके मन में इच्छा जागी। स्वामी जी इन महात्माओं की खोज में पर्वतों पर गये परन्तु जिस किसी व्यक्ति से उनके सम्बन्ध में पूछा वह उनके बारे में या तो केवल अनभिज्ञता प्रकट करता अथवा उनके बारे ऐसी गप्पें हाँक देता कि जिस पर कोई विश्वास न कर सके। फलतः बीस दिन तक उनकी खोज में भटकते हुए पुनः केदारघाट लौट आये।

अगम्य अरण्य में- उस समय स्वामी जी महाराज को पर्वतीय पर्यटन की बहुत रूचि हो गई थी।

अब वे तुङ्गनाथ के शिखर पर चढ़ गये। वहाँ मन्दिर को पुजारियों तथा मूर्तियों से भरा पाया। आप उसी दिन वहाँ से लौट आये। लौटने पर दो मार्ग मिले जिनमें से एक पश्चिम की ओर दूसरा पश्चिम दक्षिण को जाता था। स्वामी जी जंगल की दिशा को चल पड़े। थोड़ी दूर जाकर आप एक घने बन में पहुँच गये। वहाँ के शैल खण्ड बण्ड और नदियाँ भी जल विहीन अर्थात् सूखी थीं। आगे का मार्ग भी दिखाई नहीं देता था। इस दुर्गम पथ को देखकर वह सूखी घास व झाड़ियों को पकड़ कर नाले के ऊँचे तट पर जा चढ़े। तब एक ऊँची शिला पर खड़े होकर चहुँ दिश दृष्टि डाली तो अगम्य पहाड़ियों, टीलों तथा जंगल के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न देता था। उस समय सूर्य भी अस्त हो रहा था। स्वामी जी महाराज को यह चिन्ता हुई कि उस सुनसान निर्जन वन में लकड़ी व जल के बिना मेरी क्या दशा होगी। विवश होकर आप मनुष्य-बस्ती की खोज में चल पड़े परन्तु मार्ग में ऐसे ऐसे अगम्य स्थान आये कि कांटों के अधिक्य के कारण वस्त्रों की धज्जियाँ उड़ गई। शरीर से रक्त बहने लगा। और पाँव भी लंगडाने लगे। बहुत दुःख कष्ट सहते हुए अन्त को आप पर्वत से नीचे उतरे और स्वयं को जन-पथ पर पाया। चहुँ दिशा अन्धेरा छा रहा था। आपको अनुमान से मार्ग की टोह करनी पड़ी। अन्त को ऐसे स्थान पर पहुँच गये जहाँ कतिपय पर्णकुटिया दिखाई पड़ी। यहाँ पता चला कि यह मार्ग ऊखी मठ को जाता है। स्वामीजी ने वहाँ पहुँचकर रात ऊखी मठ में बिताई। प्रातःकाल गुप्तकाशी चले गये। परन्तु ऊखी मठ देखने की अभिलाषा से पुनः ऊखी मठ लौट आये। मठ आडम्बरयुक्त व पाखण्डी साधुओं से भरा हुआ था।

यहाँ के बड़े महन्त ने स्वामी जी महाराज को अपना चेला बनाना चाहा। उसने विपुल पूज्जी व सम्पदा का प्रलोभन दिया। उसने कहा-“हमारी गद्दी के तुम स्वामी होंगे।” स्वामी जी ने उसे कहा-“यदि मुझे धन की लालसा होती तो मैं अपने पिता की सम्पत्ति को, जो तुम्हारे इस स्थल, धन धान्य से कहीं बढ़कर थी, न छोड़ता।” पिता की सकल सम्पदा क्यों छोड़ता? यह भी कहा, जिस उद्देश्य के लिए मैंने घर को छोड़ा, और सांसारिक ऐश्वर्य से मुख मोड़ा, वह आपके पास रहने से पूरा नहीं हो सकता। उस महन्त ने आपको अधिक समय अपने यहाँ रूकने को कहा। परन्तु वे अगले दिन ही जोशी मठ को चल दिये। यहाँ बहुत से विद्वान् योगी तथा सन्यासी आपको मिले जिनसे आपको योग विषयक कई नई नई बातों का ज्ञान हुआ।

व्यायाम शिक्षक की आवश्यकता

आर्यवीर दल की शाखा लगाने हेतु एक व्यायाम शिक्षक की आवश्यकता है, पुरोहित का कार्य जानने वाले शिक्षक को विशेष प्राथमिकता दी जायेगी। व्यायाम प्रतिदिन सवेरे 5.30 से 6.30 बजे तक करवाया जाता है।

गतांक से आगे

आओ अपने घर चलें

—(सत्यानन्द वेदवागीश)

छठे ऐश्वर्य=छठी सम्पत्ति—समाधान= चित्त की एकाग्रता= चित्तवृत्ति-निरोध के अभी दो उपाय बताये गये। १. अभ्यास+वैराग्य। २. ईश्वरप्रणिधान = परमात्मा में ध्यानमग्न होना। इनके अतिरिक्त कुछ और उपाय हैं, जिनका सहारा लिया जा सकता है। जैसे—(क) मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा; इनकी भावना से चित्त को प्रसन्न रखना। सुखी जनों को देखकर उनसे मित्रता करने की भावना। दुःखी लोगों पर करुणा = दया की भावना। पुण्यात्मा जनों को देखकर प्रसन्न होना। पापी अथवा अपराधी लोगों के प्रति उपेक्षा अर्थात् उदासीनता की भावना रखना। ऐसा करने से चित्त प्रसन्न रहता है, जिससे एकाग्रता में सहायता मिलती है। (ख) प्राणायाम— भोजन करने के कम से कम तीन घंटे पश्चात् और पानी पीने के आधे घण्टे के बाद, मलमूत्र-त्याग से निवृत्त होकर शुद्ध वायु में सुखासन में बैठकर, श्वास को बाहर फेंक दें और उस समय मूलेन्द्रिय को ऊपर की ओर संकुचित करें। जब घबराहट हो तो धीरे से श्वास अन्दर भरें पर अन्दर रोकें नहीं। फिर श्वास बाहर निकालें और बाहर ही रोकें। इस प्रकार अपने सामर्थ्य के अनुसार दस-पन्द्रह-बीस बार दोहरायें, यह बाह्य विषय हुआ। दूसरा आभ्यन्तर-विषय। इसमें श्वास से फेफड़ों को पूरा भर लेना और अन्दर ही रोकें रखना। घबराहट होने पर श्वास को बाहर निकालना और पुनरपि श्वास अन्दर खींचकर फेफड़ों को भरना। इस प्रक्रिया को भी सामर्थ्य अनुसार बढ़ाते जायें। तीसरा विषय है स्तम्भवृत्ति। अर्थात् प्राण को जहाँ का तहाँ रोक देना। हाथ की अंगुलियों के पोरवों पर अंगूठे से मान लो, आपने बारह तक गिनने का विचार किया, तो बाहरवें पोरवे पर अंगूठे के पहुँचते ही प्राण जिस अवस्था में हो— अन्दर हो या बाहर हो, उसे तुरंत रोक देना। इस प्रक्रिया को भी कई बार दुहराया जा सकता है। चौथा है— बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी— इसमें पहले बताये गये बाह्यविषय और आभ्यन्तर विषय को साथ साथ करना है। किन्तु इसमें इतना विशेष है, कि जब प्राण बाहर निकाल दें और उसे वहीं रोक दें, तब भीतर लेने की इच्छा हो, तो भीतर न लेकर, अन्दर के वायु को धक्के से बाहर निकालना, इस प्रकार एक-दो बार करने के बाद जब न रहा जाय तो, धीरे से श्वास भीतर भर लें और भीतर रोकें। जब बाहर निकालने की इच्छा हो, तो बाहर न निकालें, अपितु बाहर से और थोड़ा वायु लेकर फेफड़ों में भरें। एक दो बार ऐसा करने के बाद श्वास छोड़ना। यह एक प्राणायाम हुआ। इसे भी सामर्थ्यानुसार बढ़ा सकते हैं। इस प्राणायाम के लाभ के विषय में योगिराज स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं—“ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रुककर, प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियाँ भी स्वाधीन होते हैं। बल, पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप हो जाती है”। (सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास) इन प्राणायामों को करते समय मन में ईश्वर के पवित्र नाम ‘ओ३म्’ का जप करते रहें। (ग) दिव्य रूप आदि विषयों में चित्त स्थिर करना। तालु में संयम करने से = चित्त को लगातार वहाँ लगाये रखने से दिव्यरूप की अनुभूति होती है। जिह्वा के अग्रभाग में

संयम करने से दिव्यरस का भान होता है। नासिका के अग्रभाग में संयम करने से दिव्य गन्ध की अनुभूति होती है। जिह्वा के मध्य भाग में संयम करने से दिव्यस्पर्श का भान होता है। जिह्वा के मूल में चित्त को टिकाने से दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है। इनमें से किसी एक का अभ्यास करने से भी समाधान = चित्त की एकाग्रता=चित्तवृत्तिनिरोध में सहायता मिलती है। (घ) शोक से रहित हो कर चित्त को सात्त्विक प्रकाश से प्रकाशित करना। जब चित्त शोक रहित हो जाता है, तब उसकी ज्योतिःपूर्णता वाली = प्रकाशवाली स्थिति हो जाती है, जिससे चित्त-निरोध होता है। अतः चित्त को शोकरहित रखने का अभ्यास करना चाहिये। (ङ) चित्त को राग से रहित करना। शब्द, स्पर्श, धन, प्रतिष्ठा आदि में चित्त को नहीं फंसे देना। यह बात पहिले वैराग्य वाले उपाय में भी आ चुकी है। रागरहित- फंसावट रहित चित्त को निरुद्ध करना सरल होता है। (च) स्वप्न अथवा निद्रा की सी अनुभूति करना। अर्थात् बैठे-बैठे यह कल्पना करना कि मैं कोई स्वप्न देख रहा हूँ अथवा जैसे निद्रा आने पर शरीर के अंग निश्चेष्ट हो जाते हैं और मन भी बाह्यविषयों से विमुख सा हो जाता है, ऐसी कल्पना करने से चित्त की स्थिरता में लाभ होता है। (छ) अथवा यथाभिमत ध्यान के द्वारा भी चित्त एकाग्र हो जाता है। यहाँ किसी बाह्यस्थूल वस्तु का ध्यान करने की बात नहीं है। यथामत ध्यान नहीं अपितु यथाभिमत ध्यान की बात है। अभिमत से अभिप्राय अपना लक्ष्य भी प्राप्त कर लिया जाय और उसके लिये कोई अवलम्बन, भी लिया जाये। तो यहाँ लक्ष्य है- चित्त की एकाग्रता=चित्त का निरोध। तो वह लक्ष्य किसी स्थूलवस्तु का ध्यान करने से सम्भव नहीं। यदि किसी पुष्पया मूर्ति को सामने रखकर ध्यान करेंगे, तो चित्त उसके, पंखुड़ियों वृत्तआदि पर दौड़ेगा। मूर्ति के नाक, कान आदि पर दौड़ेगा। ऐसी अवस्था में चित्त तो अनेकाग्र हो गया। अतः कोई और उपाय करना चाहिये। जैसे मन में एक तिल की कल्पना करें। तिल का गोल भाग ऊपर है, नीचे उसके मुख वाला भाग है। अब कल्पना से उस तिल को बीच में काट दीजिये। अब तिल का गोल भाग ऊपर है और नीचे उसके दो कोण वाला भाग है। उसको भी काट दीजिये। ऐसा करते करते उस तिल का अभाव हो जायगा। चित्त स्थिर होने लगेगा। अथवा आपको किसी भजन की पंक्ति अति प्रिय है, उसे दोहराते रहिये। 'प्रभु आपन से महान् कोई और नहीं' इसे बारंबार दोहराते रहिये। अन्य विचार मन में मत आने दीजिये। इससे चित्तवृत्तिनिरोध में अवश्य सहयोग मिलेगा।

अपने असली घर-विशालतम घर पहुँचने के लिये उपर्युक्त छः प्रकार के ऐश्वर्य का सञ्चय करना आवश्यक है। यह इस पथ का पाथेय है। बिना पाथेय के तो छोटी यात्रा भी सुखदायी नहीं होती। तो इस पाथेय के= षट्क सम्पत्ति रूपी ऐश्वर्य के सञ्चय में कौन सफल होते हैं? जो अप्तुरः हैं= तीव्र वेग से कर्म करने वाले हैं। "अप्" नाम कर्म का है। 'अपँ पालने' (काश. कृ. धा. १.२२७) धातु से कर्म में क्विप् प्रत्यय करने पर अप (=अप्+जस्=अपः) बनेगा। अप्यन्ते पाल्यन्ते नियमेन आश्रीयन्ते यानि तानि अपः = कर्माणि। अद्ध्यः= कर्मभ्यो ये तितुरति= त्वरांकुर्वन्ति ते अप्तुरः। अप+तुरँ (त्वरणे जुटो. १९) धातु से 'क्विप्च' (अ. ३.२.७६) से कर्त्ता में क्विप्। 'गतिकारकोपपदात् कृत्' (अ. ६.२.१३८) से उत्तरपदप्रकृतिस्वर में धातु का- उ उदात्त।

तो ऐश्वर्यलाभ के लिये त्वरा से शीघ्रता से कर्म करना है। तभी हम ऐश्वर्यवान् बन पायेंगे। इस प्रकार पहले उपाय 'इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः' का संक्षिप्त विवेचन पूरा हुआ।

दूसरा उपाय है- 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' विश्वम् आर्यं कृण्वन्तः' विश्व को= सम्पूर्ण जगत् को आर्य बनाते हुए। विश्व शब्द के दो अर्थ प्रसिद्ध हैं। जगत् और सम्पूर्ण=समस्त। तो सर्वादिगण में जो विश्व शब्द है, उसका यहाँ ग्रहण है। 'सर्वादीनि सर्वनामानि' (अ.१.१.२६) के अनुसार यहाँ विश्व का अर्थ =सर्व =समस्त=सम्पूर्ण अर्थ ही है, जगत् या संसार अर्थ नहीं है। अंग्रेजी की एक कहावत है-Charity begins at home दान देना अच्छा है, पर उसका आरम्भ अपने से होना चाहिये। वेद में आये 'विश्व' शब्द का प्रायः समस्त=सम्पूर्ण अर्थ ही है। उदाहरण के लिये आठ 'प्रार्थनो.' मन्त्रों में चार बार 'विश्व' शब्द है- 'विश्वानि देव सवितः', 'यस्य विश्व उपासते', 'विश्वा जातानि परि ता बभूव', 'विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्' यहाँ सर्वत्र समस्त का वाचक 'विश्व' शब्द है। इसी प्रकार अधमर्षण मन्त्र में- 'विश्वस्य मिषतो वशी', शान्तिपाठ में विश्वे देवाः शान्तिः'। आदि। अर्थात्-सम्पूर्ण को आर्य बनाते हुए। अपने सम्पूर्ण को आर्य बनावें; मेरा वचन, कर्म, आचरण, लेख, प्रवचन, मनन आर्य हो। फिर उसका विस्तार-अपनी पत्नी को आर्य बनावें, अपने सन्तानों को आर्य बनावें- परिवार को - कुटुम्ब को आर्य और उसका विस्तार करते जायें। इस विस्तार में सब जगत् भी आ जायेगा। यह भाव विश्व के सम्पूर्ण अर्थ के ग्रहण से सम्भव है। विश्व का जगत् अर्थ लेने वालों की जगत् के आर्यत्व की चिन्ता तो रहती है, किन्तु वे स्वयं पूर्णतः आर्य बन रहे हैं कि नहीं इस पर ध्यान नहीं रहता।

अब 'आर्य' किसे कहते हैं? जो गति शील है- प्रगतिशील है, वही आर्य है। 'ऋ गतिप्रापणयोः' (भ्वा. ६७१) धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' (३.१.१२४) से ण्यत् प्रत्यय- ऋ+ण्यत्-ऋ+य-आर्+य= आर्यः। ऋच्छति गच्छति निरन्तरं गतिशीलो भवति अन्यांश्च तेषां लक्ष्यं प्रापयति स आर्यः। यहाँ प्रत्यय के अनुसार 'आर्य' शब्द अन्तस्वरितत्व वाला होना चाहिये, किन्तु वेद में सर्वत्र आर्य शब्द आद्युदात्त ही है। इसके लिये या तो बाहुलकात् ण्यन् प्रत्यय मानना चाहिये। अथवा ण्यत् प्रत्ययान्त कुछ शब्दों को आद्युदात्त बताने वाले 'ईडवन्दवृशंसदुहांण्यतः' (अ. ६.१.२०८) सूत्र में प्रश्लेष से वृ के बाद ऋ का भी पाठ मानना चाहिये।

हमने अपनी 'अष्टाध्यायीसूत्रप्रयोगदीपिका- वृत्ति' के पृष्ठ सं. ३२५ पर 'ईडवन्द' सूत्र पर इस बात की चर्चा की है- 'वृ' इत्यत्र श्लेषेण 'ऋ' इत्यपि बोध्यम्। तेन 'आर्य' शब्द आद्युदात्तः सिध्यति'। यहाँ दीर्घत्व-प्राप्ति का निवारण 'शकन्श्वादिषु पररूपम्' (वा. अ.६.१.९१) से हो जायेगा। जैसे शक+अन्धुः = शकन्धुः। शक के क के अ और अन्धुः के अ। इन दोनों अकारों के स्थान पर एक अकार= शेष रहता है। वेसे ही उपर्युक्त सूत्र में वृ के ऋ और स्वतन्त्र ऋ धातु के ऋ, इन दोनों के स्थान पर एक ऋ शेष रहेगा।

'अपने घर' पहुँचने के जिन चार उपायों की चर्चा की गई थी। उनके वेदवाक्यों में कोई क्रिया पद नहीं हैं। 'इन्द्रं वर्धन्तः', २ 'विश्वम् आर्यं कृण्वन्तः' ३. 'अराव्यः अपघ्नन्तः', ४. 'इन्द्रं गच्छन्तः'। इनमें शतृप्रत्ययान्त शब्द हैं और वे सब अप्तुरः + सुताः + बभ्रवः + इन्दवः' के विशेषण के रूप में हैं।

इनमें से जो दूसरा उपाय- 'विश्वम् आर्यं कृण्वन्तः। बताया गया है। उस पर विशेष चिन्तन आवश्यक है। राम आर्य थे। वाल्मीकि के पूछने पर नारद ने राम के जो चौसठ गुण बताये, उनमें 'आर्यः सर्वसमश्चैव' कहकर राम को आर्य बताया। ननिहाल से लौटने पर, भरत ने राम के प्रसङ्ग में अनेक बार 'यस्यार्योऽनुमते गतः'। कहा है। महाभारत में भी एक विशेष गुण के रूप में 'आर्य' शब्द का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है। महाभारत काल के अनुपम नीतिज्ञ सत्यवक्ता निर्भीक वाग्मी महात्मा विदुर तो 'आर्य' शब्द पर विशेष बल देते थे। धृतराष्ट्र ने एक बार विदुर से कहा- तुम बार बार 'आर्यत्व' पर जोर देते हो, यह बताओ कि आर्य कौन होता हैं, तब विदुर ने कहा-

“न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं, न दर्पमारोहति, नास्तमेति।

न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं, तमार्यशीलं पुनराहुरार्याः।।

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं, नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।

दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं, स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः।।”

(महाभा.उ.३३.११७,११८)

यहाँ आर्य की सात विशेषताएँ बताई गई हैं-

१. 'प्रशान्तं वैरं न उद्दीपयति' - जो शान्त हुई शत्रुता को, फिर से नहीं भड़काता है वह आर्य है। पुराने किसी मनमुटाव को याद करके, उसके आधार पर फिर जो शत्रुता का व्यवहार नहीं करता है, वह आर्य है।

राम के वनगमन का मूल तो रानी कैकेयी थी। मन्थरा के बहकावे में आकर कैकेयी ने दशरथ के द्वारा राम को चौदह वर्ष के लिये वन में निर्वासित करने का दुराग्रह किया। प्रतिज्ञा में बंधे दशरथ को आखिर राम को वन में चले जाने को कहना पड़ा। बस पिता राजा दशरथ के आदेश को शिरोधार्य करके राम सहर्ष वनवासी हो गये। इतिहास साक्षी है, कि चौदह वर्ष के लम्बे वनवासकाल में राम ने कभी, अपने वनवास के मूल कारण कैकेयी के लिये कुवाच्य शब्दों का प्रयोग नहीं किया। ननिहाल से लौटकर आये भरत ने जब अपने पिता को मृतावस्था में देखा और पितृतुल्य बड़े भाई राम को चौदह वर्ष के लिये वन में गया हुआ जाना और इन सबका मूल कारण, अपनी माता कैकेयी को पाया, तो भरत के मन में कैकेयी के लिये भारी रोष उत्पन्न हुआ और इच्छा हुई, कि इस सबके लिये माता को कुवाच्य कहे जायें। रामायण में वर्णन है कि भरत के इस प्रकार विचार करते ही उसको भय हुआ, कि यदि राम को यह पता लगेगा, कि भरत ने कैकेयी को कुवाच्य कहे हैं, तो वे मुझ से बोलना बंदकर देंगे।

(क्रमशः)

श्रावणी पर्व मनाने हेतु सूचना

प्रिय आर्य बन्धुओं महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास में श्रावणी पर्व दिनांक 21 अगस्त रविवार को मनाने हेतु अधिक से अधिक संख्या में पधार कर इस पुण्य पर्व का लाभ उठाने की कृपा करावें।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे

-पं.रामनारायण शास्त्री

मानव शरीर को वैदिक साहित्य में देवपुरी दैवी नौका यज्ञी या तनू' आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है । भू आदि सप्तलोकों की बात न करके केवल भूमण्डल पर ही देखें तो असंख्य प्राणि शरीर दिखाई पड़ते हैं; फिर इन सबके रहते हुए (जिनकी कल्पना (८४) चौरासी लाख योनियों के रूप में की जाती हैं) केवल मानव शरीर को ही उक्त विशेषणों से क्यों पुकारा जाता है ? यजुर्वेद के अनुसार मानव शरीर में सप्तऋषि पूर्व से ही, उसके निर्माण या जन्मकाल से ही विद्यमान है । सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे^१ । ऋषियों को देव भी कहा जाता है इस कारण ऋषि=देव जहां रहते हैं उसे देवपुरी या देवनगरी कहा गया है । ये देव अथवा ऋषि मानव शरीर में रहते हैं इसलिए महर्षि कृष्ण हैपायन व्यास महाभारत में घोषणा करते हैं कि मानव से श्रेष्ठ इस संसार में कुछ भी नहीं है नहि भानुषाच्छ्रेष्ठशतरं हि किञ्चित्^२ ।

शरीर-हिंसा अर्थवाली 'शृहिंसायाम्' धातु से औणादिक ईरन-प्रत्यय "कृ-शृ-पृ कटि पटिशौटिभ्य ईरन्" करने पर शरीर शब्द सिद्ध होता है । शृजाति हिनस्ति नाशयति पापानि भोगेन पुण्यापुण्यानि पूर्वकृतानि यत् तच्छरीरम् । समीहा इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के विषय=अर्थ प्राप्ति का जो साधन है उसे शरीर कहते हैं । चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्^३ । प्राण अन्तःकरण शिर नाभि ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ जहाँ आश्रित हैं अथवा इन सबका जो आश्रयस्थल है शरीर है । यत्सर्वमस्मिन्नाश्रयन्त तस्मादु शरीरम्^४ । ऐतरेय ब्राह्मण में शरीर का लक्षण करते हुए लिखा है रेतस् और वपा शरीर नहीं, सच में जो लोहित और मांस है वह शरीर है । अशरीरं वै रे तोऽशरीरं वपा यद् वै लोहितं यन्मांसं तच्छरीरम्^५ । आरव्यक. व उपनिषत् साहित्य कहता है कि आत्मा सुख दुःख का अनुभव जिसके माध्यम से करता है शरीर है । केन सुखदुःखमिति शरीरेण^६ । महाकवि कालिदास के अनुसार धर्म का प्रथम साधन ही शरीर है । शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्^७ । ऐसा शरीर जो सबका आश्रयस्थल है धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टयका प्रथम साधन है तथा जिससे श्रेष्ठ इस ब्रह्माण्ड में कुछ भी नहीं । तो सच है कि ऋषि=देव वहाँ आकर रहेंगे ही; इसलिए वेद सत्य कहता है कि शरीर में सात ऋषि प्रतिष्ठित हैं ।

ऋषि-शतपथब्राह्मण ऋषियों के विषय में लिखता है कि जिन्होंने सर्व प्रथम इस ब्रह्माण्ड से ज्ञान को चाहते हुए श्रम से तप से प्राप्त किया वे ऋषि कहलाये । ते यत् पुरास्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषंस्तस्मादु ऋषयः^८ । तैत्तिरीयारण्यक ऋषियों के विषय में इसी प्रकार एक कदम और आगे की बात करता है उसका मानना है कि ब्रह्म व ब्रह्माण्ड के सत्य तथ्य को जानने के लिए तपस्या करने वालों को स्वयम्भू ब्रह्म स्वयं प्राप्त हो गया इसीलिए वे ऋषि कहलाये । उनका ऋषित्व यही है कि श्रम व तप करते हुए स्वयं ज्ञान प्राप्त हो जाये । अजानन् ह वै पृथ्वी स्तपस्मानान् ब्रह्म स्वयमन्वभ्यावर्षत् तदृषयोऽभवन्

तदृषीणांमृषित्वम्^{१३}। जैमिनीय ब्राह्मण उनको ऋषि मानता है जिन्होंने श्रम तप और व्रतचर्या से स्वर्गलोक को प्राप्त किया। ऋषयो ह वै स्वर्गं लोकं जिग्युः श्रमेण तपसा व्रतचर्येण^{१३}। ऐतरेय ब्राह्मण का कहना है कि जो हममें ऋषि हुए और पूर्व ही चले गये सच में वे कवि थे। ये वै त न ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते वै कवयः^{१४}। शतपथ ब्राह्मण ऐतरेय की पुष्टि करते हुए कवि के साथ विप्रों को भी ऋषि मानता है। एते वै विप्रा^{१५} यदृषयः एते वै कवयो यदृषयः^{१६}। भले और बुरे का ज्ञान रखने वाला ही कवि=क्रान्तदर्शी होता है और इसे ही ऋषि कहते हैं, इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए शतपथ ब्राह्मण कहता है कि जो ज्ञान कर्म के बोध की दृष्टि से महान है अनूचान है वही ऋषि है वही आर्षेय है। यो ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः^{१७}। ब्राह्मण ग्रन्थों के इन वचनों से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि जो ज्ञान के प्रति प्रयत्नशील है जो जानने में समर्थ है, जानकर आचरण करने में तत्पर है। ज्ञान प्राप्त करना हेयोपादेय को समझना जिसका धर्म है वह ऋषि है। महर्षि यास्क देखने व समझने के कारण ही ऋषि को ऋषि कहते हैं ऋषिर्दर्शनात्^{१८}।

इस प्रकार के ज्ञान धर्म वाले एक नहीं अनेक ऋषि हमारे शरीर में विद्यमान हैं रह रहे हैं। वे कौन और कितने हैं इस जिज्ञासा के समाधान में हम वेदमन्त्र और उसके व्याख्यान को निवेदन कर रहे हैं। “सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे” का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं—जो पाँच ज्ञानेन्द्रिया मन और ये सात विषय को प्राप्त कराने वाले शरीर में प्रतीति पूर्वक रखे हुए हैं—ये सप्त=पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च ऋषयः= विषय प्रापकाः शरीरे प्रतिहिताः प्रतीत्या धृताः^{१९}।

निश्चित रूप से इन्द्रियां ऋषि हैं क्योंकि वे अपने-अपने विषय को, तत्त्व को समझकर मन और बुद्धि के द्वारा आत्मा को प्राप्त कराती हैं। इन्द्रियाणि वै ऋषयः। इमानि अर्थानवगम्य मनोबुद्धिभ्याभात्मानं प्रापयन्ति; तस्मादाहेन्द्रियाणि वै ऋषयः^{२०}। यजुर्वेद का व्याख्याग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण उसके तेरहवें अध्याय के अन्तिम पाँच मन्त्रों की व्याख्या में कारण व नाम सहित प्राण मन चक्षु श्रोत्र और वाणी के ऋषित्व का निर्देश करता है। सच में प्राण वसिष्ठ ऋषि है क्योंकि वह श्रेष्ठ है तथा अतिशयरूप से आच्छादित हुआ अथवा व्यवस्थित रूप से वसा रहता है। वसिष्ठ ऋषिरिति। प्राणो वै वसिष्ठऋषिर्यद् वै नु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठोऽथो यद् वस्तृतमो वसति तेनो एव वसिष्ठः^{२१}। प्राण इन्द्रिय आदि सबको वश में करके रहता है इसलिए वसिष्ठ है। हम जिस ऐतिहासिक वसिष्ठ नामक ऋषि से परिचित हैं वह भी अपने मनः प्राण इन्द्रिय आदि को वश में करके रहता है इसलिए वसिष्ठ है। जैसा कि कवि कुलगुरु महाकवि कालिदास ने कहा है वशी वसिष्ठः^{२२}। ब्राह्मणग्रन्थों में प्राणों का ऋषि अनेकत्र कहा गया है। प्राणा ऋषयः^{२३}। प्राणा उ वा ऋषयः^{२४}। प्राणा वा ऋषयाः^{२५}। शतपथ ब्राह्मण में प्राणों को देव भी कहा है^{२६} प्राणा वै विश्वेदेवाः।

वाज का अर्थ अन्न है जो मन को धारण करता है मन को पुष्ट करता है और मन अन्न को धारण करता है इसलिए मन भरद्वाज ऋषि है। भरद्वाज ऋषिरिति। मनो वै भरद्वाज ऋषिरन्नं वाजो यो वै मनो बिभर्ति सो अन्नं वाजं भरति तस्मान् भुनो भरद्वाज ऋषिः^{२७}। चक्षु जमदग्नि ऋषि है, क्योंकि इसके द्वारा ही

जगत् को देखा जाता है अथवा आत्मा चक्षु के द्वारा जगत् को देखता है, इसलिए चक्षु जमदग्नि ऋषि है । जमदग्नि ऋषिरिति । चक्षुर्वै जमदग्नि ऋषिर्यदननेन जगत् पश्यत्यथो यनुते तस्माच्च श्रुजमदग्निऋषिः^{२८} । श्रोत्र के द्वारा सब ओर से अर्थात् सभी दिशाओं से सुना जाता है और इसके लिए सब ओर मित्र ही मित्र होते हैं इसलिए श्रोत्र विश्वामित्र ऋषि है । विश्वामित्र ऋषिरिति । श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिर्यदननेन सर्वतः श्रृणोत्यथो यदस्मै सर्वतो मित्रं भवति तस्मात् श्रोत्रं विश्वामित्रऋषिः^{२९} । वाणी के द्वारा ही सब कुछ किया जाता है इसलिए वाणी विश्वकर्मा ऋषि है । विश्वकर्मऋषिरिति । वागं वै विश्वकर्म ऋषिर्वाचा हीदं सर्वं कृतं तस्माद्वाग् विश्वकर्मर्षिः^{३०} । इसी प्रकार गन्ध को प्राप्त करने वाली होने के कारण नासिका को गन्धर्वऋषि कहते हैं, और सभी इन्द्रियां त्वचा से बने गोलकों में रहती हैं अथवा सभी में त्वगिन्द्रिय व्याप्त है इसलिए त्वग् गौतमऋषि है । यजुर्वेद के तेरहवें अध्याय में तथा व्याख्यान शतपथ में मन को भरद्वाजऋषि कहा है, वही यजुर्वेद के चौतीसवें अध्याय में समस्त ज्ञान विज्ञान की राशि सभी वेद मन में प्रतिष्ठित हैं । यह भी कहा है । यस्मिन्भृचःसामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाः^{३१} । इस कारण मन ब्रह्मर्षि ब्रह्म और ब्रह्मा भी है । मनो ब्रह्म^{३२} । मनौ वै सम्राट् । परमं ब्रह्म^{३३} । मन एव ब्रह्मा^{३४} ।

जिस विषय या तत्त्वज्ञान को इन्द्रियाँ मन व बुद्धि के द्वारा आत्मा को प्राप्त कराने वाली हैं वह तत्त्वज्ञान हेय अथवा उपादेय है इस सत्य तथ्य का निश्चय करने के कारण बुद्धि=प्रज्ञा भी ऋषि है । इस प्रकार इस विवेचन के आधार पर यह सप्रभाव सिद्ध है कि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ मन और बुद्धि ये सप्तऋषिः शरीर में प्रीति व प्रतीतिपूर्वक रखे हुए हैं । सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे ।

सन्दर्भ :

- १ अथर्ववेद १०, २, २१॥
- ऋग्वेद १०, ६३, १०
- यजुर्वेद २१, ६॥ ४, १३॥
- २-यजुर्वेद ३४, ५५॥
- ३-महाभारत
- ४-धातुपाठ क्र्यादिगण १७॥
- ५-उणादिकोष ४। ३०॥
- ६-न्यायदर्शन १, १, ११॥
- ७-भा. श. ब्रा. ६, १, १, ४॥
- ८-ऐ. ब्रा. १, १४॥
- ९-शांखायनारव्य ३, ७, ॥
- कौ. उपनिषद् १, ७॥
- १०-कुमारसम्भवम् ५,
- ११-भा.श.ब्रा. ६, १, १, १॥
- १२-तै.आ. २, ६, १॥
- १३-जै.ब्रा. २, २१०॥
- १४-ऐ.ब्रा. ६, २०॥
- १५-भा.श.ब्रा. १, ४, २, ७॥

- १६- भा.श.ब्रा. १, ४, २, ७-८॥
- १७-भा.श.ब्रा. ४, ३, ४, १६॥
- १८-निरुक्त १, ११॥
- १९-यजुर्वेद ३४, ५५। दयानन्द भाष्य
- २०-काठक संकलन १३५, ६॥
- २१-भा.श.ब्रा. ८, १, १, ६॥
- २२-रघुवंशम् २, ॥
- २३-भा.श.ब्रा. ७, २, ३, ५॥
- २४-वही ८, ४, १५, २५॥
- २५-वही ६, १, १, १॥
- २६-वही १४, २, २, ३७॥
- २७-वही ८, १, १, ६॥
- २८-वही ८, १, २, ३॥
- २९-वही ८, १, २, ६॥
- ३०-वही ८, १, २, ६॥
- ३१-यजुर्वेद ३४, ५॥
- ३२-गोपथ ब्रा. १, २, १, ०॥ व ११॥
- ३३-भा.श.ब्रा. १४, ६, १०, १५॥ , ३४-गो.ब्रा.श. १, २, १०॥ व २, ५, ४॥

साढ़े चार मास का जोधपुर प्रवास

जोधपुर का राजमहल न तो इतना छोटा था कि उसमें स्वामीजी के बैठने के लिये और कोई स्थान ही नहीं था, जिससे वे सीधे राजा के अन्तःपुर में ही चले जाते और राजमहलों के अदब-कायदों को जानने वाले यह भी जानते हैं कि महाराजा को बिना सूचना दिये उन तक स्वामीजी का पहुँच जाना अशक्य ही था।

स्वामीजी जहां राजाओं के वेश्यागामी होने की कटु आलोचना करते वहां क्षत्राणियों के पतिव्रत धर्म की प्रशंसा करने में भी पीछे नहीं रहते थे। उन्होंने एक प्रसंग में कहा कि इन राजाओं के दुराचापूर्ण कृत्यों ने तो उन्हें कभी का नष्ट कर दिया होता, किन्तु यह तो रानियों का पतिव्रत धर्म ही है, जिसके कारण वे बचे हुए हैं, अन्यथा उनके कुकर्मा ने तो उनका बेड़ा कभी का गर्क कर दिया होता। ज्यों—ज्यों स्वामी दयानन्द के भाषणों का इस नगर में सर्वत्र स्वागत होता दिखाई पड़ा विरोधी लोग उनके जीवन को ही समाप्त करने के लिये बद्धपरिकर होने लगे। नन्हीं भगतन की स्वामीजी से नाराजगी का कारण स्पष्ट था। यदि उनके उपदेशों से प्रभावित होकर, महाराजा जसवन्तसिंह कर्तव्योन्मुख हो जायेंगे तो फिर उन्हें कौन पूछेगा ? इसी प्रकार रामानुज मतानुयायी मेहता विजयसिंह भी स्वामीजी द्वारा की गई स्वमत की आलोचना से खिन्नता अनुभव कर रहे थे। नन्हीं भी वैष्णव मत को मानती थी। इस प्रकार चकांकित वैष्णवों और नन्हीं दोनों ही स्वामीजी के समान शत्रु बन गये। इस षडयन्त्र में मुसलमान का कट्टर वर्ग भी शामिल हो गया, जिसका प्रतिनिधित्व मियां फैजुल्ला खां कर रहा था। इन सबने मिल कर महाराज के रसोइये—शाहपुरा निवासी धूला मिश्र को गांठा और उसे स्वामीजी को सोते समय दूध में विष दे देने के लिये तैयार किया।

लोक में उक्ति प्रसिद्ध है कि विपत्ति जब आती है तो किसी अन्य दुर्घटना से उसका पूर्वाभास हो जाता है। स्वामीजी के साथ भी नियति ऐसा ही खेल-खेल रही थी। जोधपुर में स्वामीजी के तीन मास (31 मई से लेकर अगस्त तक) तो निर्विघ्न गुजरे। किन्तु विघ्नों का सूत्रपात 12 सितम्बर की रात्रि को हुआ जब भरतपुर का कल्लू कहार, जो स्वामीजी के साथ रहता था, उनके बैग को काट कर रुपये मोहरें तथा शाल चुरा कर ले गया। यह चोरी आनुमानिक 5-6 सौ रूपयों की थी। सवेरे जब पुलिस को सूचित किया गया तो सिटी कोतवाल कर्नल मुहीउद्दीन ने पूछताछ की, कुछ लोगो को पकड़ा किन्तु वास्तविक अपराधी हाथ नहीं आया। पुलिस वालों ने स्वामीजी के लेखक—पण्डितों रामचन्द्र और देवदत्त के भी बयान लिये। परिस्थितियां धीरे-धीरे महाराज के प्रतिकूल होती जा रहीं थीं। स्वामी दयानन्द को जोधपुर में आमंत्रित करने वाले महाराजा जसवन्तसिंह को भी उनका शिक्षाओं में कोई आकर्षण प्रतीत नहीं हुआ। स्वामीजी के साढ़े चार मास के इस सुदीर्घ प्रवास में वे केवल तीन बार ही श्री चरणों के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। स्वामीजी भी राईकाबाग राजमहल में तीन बार राठौड़ राजा को उपदेश देने के लिये गये। यह तो सत्य है कि महाराजा स्वामीजी की शिक्षाओं में निहित सत्य तथा उनकी

उपादेयता को महसूस करते थे, किन्तु स्वयं की मानसिक दुर्बलता तथा सामन्ती विलास पूर्ण जीवन जीने की ललक ने उन्हें कुछ कर दिखाने लायक ही नहीं रक्खा था।

देव का कैसा विचित्र विधान है कि इधर तो स्वामीजी ने पहली या दूसरी अक्टूबर को जोधपुर से प्रस्थान करने का मानस मना लिया था, उधर भाग्य को कुछ और ही मंजूर था। स्वामीजी तो जोधपुर छोड़ने का निश्चय कर चुके थे और इसकी सूचना उन्होंने पत्रों के द्वारा मसूदा निवासी वृद्धिचन्द श्रीमाली तथा छगनलाल शास्त्री को 24 सितम्बर को दे दी। उधर उन्होंने राव राजा तेजसिंह को भी लिखा कि वे चोर द्वारा काटे गये उनके बैग को सुधरवा दें ताकि वे एक अक्टूबर को यहां से प्रस्थान कर सकें। 27 सितम्बर 1883 को महाराज जुकाम से पीड़ित हुए। 29 की रात को यथानियम दूध पीकर सोये तो मध्य रात्रि को उनके पेट में भयंकर पीड़ा हुई। वे उठे, निद्रा तो भंग हो ही गई थी। किसी को जगाया भी नहीं, यद्यपि शिष्य और सेवक समीप ही सोये थे। तीन बार वमन हुआ तो महाराज ने खुद ही कुल्ला किया और पुनः सो गये। 30 सितम्बर को उठने में विलम्ब हुआ। भक्तों को चिन्ता हुई। उठते ही पुनः उल्टी हुई। महाराज को तो पहले ही कई बार विष दिया गया था। अतः उन्हें तुरन्त आभास हो गया कि इस बार भी प्राणघाती कालकूट विष दिया गया है। किन्तु इस बार का विष तो प्राण लेवा ही साबित हुआ। वमन बंद होने में नहीं आ रहा था और दुबलता बढ़ रही थी। रावराजा तेजसिंह को सूचना दी गई तथा डा.सूरजमल को भी बुलाया गया। सूरजमल ने महाराज की स्थिति को देखा तथा औषधि दी उदर-शूल में तेजी थी तथा यकृत शोध के लक्षण दिखाई देते थे। उपचार से ज्वर तो कम हुआ किन्तु यकृत की पीड़ा नहीं गई।

30 सितम्बर को महाराज प्रतापसिंह को स्वामीजी की बीमारी की सूचना कवि ऊमरदान बारठ ने दी। उन्होंने राजकीय अस्पताल के डाक्टर अलीमर्दान खां को महाराज के इलाज के लिये भेजा। डाक्टर अलीमर्दान बदायूँ जिले का रहने वाला धूर्त, खुशामदी तथा क्षुद्र प्रकृति का व्यक्ति था। उसकी योग्यता तो बहुत साधारण थी किन्तु मियां फैजुल्ला खां का विश्वास-भाजन होने के कारण सरकारी क्षेत्रों में उसे पूछा जाता था वस्तुतः सूरजमल को हटाकर अलीमर्दान को महाराज की चिकित्सा सौंपना एक भयंकर भूल थी। स्वामी दयानन्द के जीवन चरित के गवेष स्व महेश प्रसाद मौलवी ने वेदवाणी (कार्तिक 2006 वि.) में प्रकाशित अपने एक लेख में एटा जिले के निवासी श्री गंगाप्रसाद आर्य की साक्षी से लिखा है कि अलीमर्दान को स्वामीजी की चिकित्सा को बिगाड़ कर उन्हें मृत्यु के मुँह में ढकेलने के लिये वैष्णवों और नन्हीं ने कुल सत्रह सौ रुपये रिश्वत के रूप में दिया था। अलीमर्दान ने औषधि रूप में दी जाने वाली गोलियों की मात्रा बढ़ा दी, फलस्वरूप महाराज की पुण्यकाया की स्थिति पूर्वपेक्षा बिगड़ गई। पं. लेखराम ने अक्टूबर के प्रथम सोलह दिनों तक की महाराज की शारीरिक स्थिति का विवरण इस प्रकार किया है—

1. अक्टूबर— डाक्टर अलीमर्दान ने गिलास लगाया, खांसी में कमी आई किन्तु शूल यथावर रहा।
2. अक्टूबर— स्वामीजी ने विरेचन (जुलाब) लेने की इच्छा व्यक्त की।
3. अक्टूबर— विरेचन के लिये अलीमर्दान ने जो गोलियां दी उससे सीमातीत हानि हुई। रात तक लगभग 30 दस्त हुए और शरीर में कमजोरी आई।
4. अक्टूबर— दस्त कम नहीं हुए। परिणामस्वरूप महाराज को मूर्छा सताने लगी।

5. अक्टूबर— दस्तों का आना यथावत रहा। कमजोरी इतनी आई कि चार पांच सहायकों के बिना करवट लेना और उठना बैठना भी कठिन था।

6 से 16 अक्टूबर—महाराज की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। मुख, गले, जीभ, तालु तथा माथे पर छाले पड़ गये। उदर शूल तथा दस्त तो थे ही, अब हिचकी भी आने लगी। दस्तों से मुक्ति पाने के लिये महाराज ने दही तथा मट्ठा लिया किन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ।

अन्ततः जोधपुर से विदा होने की घड़ी आई। किन्तु कुछ बातें और। देश का महान धर्माचार्य, समाज सुधारक तथा नवयुग विधायक महापुरुष जोधपुर जैसे भारत के एकान्त कोने में जीवन और मौत के बीच झूल रहा है और दुनिया को इसका कुछ भी पता नहीं। 12 अक्टूबर तक तो बाहर के लोगों को स्वामीजी की दशा का कोई समाचार ही नहीं मिला। महाराज की रुग्णता की जानकारी संसार को देने का श्रेय अजमेर से प्रकाशित होने वाले पत्र "राजपूताना गजट" के सम्पादक मुन्शी मुरादअली को है, जिन्होंने अपने पत्र में यह खबर छपी। जब आर्य समाज अजमेर के सभासदों को यह समाचार पढ़ने का मिला तो प्रथम तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। वे सोचते थे कि यदि सचमुच महाराज इतने अस्वस्थ होते तो क्या अब तक यह खबर छिपी रहती। अन्ततः उन्होंने अपने एक सदस्य जेठमल सोढा का सच्चाई की जानकारी लेने के लिये जोधपुर भेजा। जब सोढाजी जोधपुर पहुंचे और उन्होंने आचार्य प्रवर के देह की दशा को देखा तो शोक संविग्न होकर बोले "महाराज, आपने अपने अस्वस्थ होने का समाचार तो हमें दिया ही नहीं।" परम आस्तिक दयानन्द का उत्तर था—"सोढाजी, यह तो शरीर का धर्म है। शरीर का सुखी ओर दुःखी होना स्वाभाविक है। यदि मैं आपको अथवा अन्य आर्य पुरुषों को इसकी सूचना देता तो आपको दुःख के अतिरिक्त और क्या होता?" अन्ततः जेठमल सोढा ने महाराज के बीमार होने की खबर तार से मेरठ, फर्रुखाबाद, लाहौर तथा बम्बई की आर्य समाजों को भेजी। उत्तर में आर्य पुरुषों के तार महाराज की स्थिति को जानने के लिये आने लगे।

स्वामीजी की चिकित्सा व्यवस्था में प्रमाद के लिए महाराजा जसवन्तसिंह और उनके अनुज कर्नल प्रतापसिंह को उत्तरदायी ठहराना उचित तो नहीं लगता किन्तु आश्चर्य और खेद का विषय यही है कि महाराजा जसवन्तसिंह और कर्नल प्रतापसिंह स्वामीजी के स्वास्थ्य की जानकारी के लिए एक बार भी नहीं आए जब कि एक रावराजा तेजसिंह तो महाराज का स्वास्थ्य समाचार जानने के लिए यदा कदा सेवा में उपस्थित होते रहे। स्वामीजी की बीमारी के दौरान कर्नल साहब तो पोलो खेलने पूना चले गए। स्वामीजी की चिकित्सा एवं स्वास्थ्य का जिमा रावराजा तेजसिंह को सौंपकर सम्भव है उन्होंने निश्चितता अनुभव करली हो। स्वामीजी का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता रहा। इस प्रकार आततायियों की इच्छा पूरी हुई। अलीमर्दान औषधि में अधिक मात्रा में कैलोमेल (पारद लवण) मिलाकर महाराज को निरन्तर देता रहा और इस प्रकार वह तीव्र विष उनके शरीर में धीरे धीरे प्रभावी होता गया।

त्रिपत्ति में अपनों का स्मरण आना स्वाभाविक ही है। किन्तु सन्यासी का कौन तो अपना और कौन पराया? तथापि स्वामीजी ने अपने प्रेमी भक्त मसूदा के राव बहादुरसिंह को याद किया और मसूदा जाने की इच्छा प्रकट की। किन्तु विधाता को कुछ और ही मंजूर था। महाराजा जसवन्तसिंह और महाराज प्रतापसिंह ने, जो तब तक पूना से लौट आये थे तय किया कि

स्वामीजी को आबू पर्वत जाना चाहिए जो ठण्डी जगह हैं, जहां वे जोधपुर राज्य की कोठी में ठहरेंगे और वहीं उनकी चिकित्सा होगी। स्वामीजी ने तो स्वयं को मानो नियति के हाथों ही अर्पित कर दिया था।

जोधपुर से प्रस्थान:

16 अक्टूबर— आज स्वामीजी को आबू के लिये प्रस्थान करना है। मध्याह्नोत्तर मियां फैजुल्ला खां की कोठी से ही अस्वस्थ दशा में पाली की सड़क पर पालकी में लेटे लेटे वे महाप्रयाण के मार्ग पर चल पड़े। चार मास पहले जो आदित्य ब्रह्मचारी चार मील पैदल चलकर जोधपुर नगर की सीमा में प्रविष्ट हुआ कृतघ्न लोगों ने उसे आज इस स्थिति में पहुँचा दिया कि वह सर्वथा अशक्त दशा में शिविका में लेटे ही यहां से विदा ले रहा है। महाराजा जसवन्तसिंह ने अपने हाथ से फलानेन की पेटी पीठ पर बांधी ताकि लेटने में उन्हें कष्ट न हो। जब महाराजा कोठी की उपर की मंजिल से सहारा देकर नीचे लाया गया और पालकी में सावधानी से लिटाया गया, तो महाराजा ने स्वयं सम्मान प्रकट करने के लिये पालकी को कंधा दिया। उनकी आंखों में आंसू आ गये और खेद पूर्ण स्वर में बोले—‘महाराज, आपका अस्वस्थ होकर यहां से जाना मेरे तथा मारवाड़ राज्य के लिये शाश्वत कलंक का कारण बन गया है। यदि आप स्वस्थ होकर पधारते तो अधिक अच्छा रहता।’ उत्तर में स्वामीजी ने महाराजा और उनके साथियों को मौन आशीर्वाद दिया। वेद भाष्य के लिये 2000 हजार नकद तथा सम्मान रूप में दो रेशमी दुशालें भेंट कर महाराजा ने प्रमाद पूर्ण कृतघ्ता का मौन प्रायश्चित्त भले ही किया हो, किन्तु क्या विधाता ने भी उसे क्षमा कर दिया था ?

मारवाड़ में साढ़े चार महीने रहकर स्वामीजी जोधपुर से चल पड़े। आगे की कथा तो बहुत संक्षिप्त है। रोहट में रुक कर पाली पहुँचे वहां से रेलमार्ग से आबू रोड़ आये। पुनः पालकी में सवार होकर पहाड़ पर चले। पर्वतीय यात्रा के कष्टों की तो कथा ही क्या ? जब श्रान्त क्लान्त महाराज को अर्धमूर्छित दशा में पंजाबी भक्त डा. लक्ष्मणदास आनन्द ने देखा तो उसने उन्हें अजमेर आने के लिये कहा। किन्तु स्वामीजी को तो पहले आबू पर्वत पर ही जाना था। पुनः 26 अक्टूबर को वे अजमेर आये और चार दिन पश्चात् ही “हे दयामय सर्वशक्तिमान परमेश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा, तूने कैसी लीला की” कहकर दयानन्द की अमर आत्मा ने अपने पांच भौतिक नश्वर शरीर को छोड़ दिया। महाराज की मानव लीला समाप्त हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के महर्षि, आर्ष धर्म द्रष्टा, अप्रतिम धर्माचार्य और समाज संशोधक, राष्ट्र एवं निखिल मानव जाति के सर्व विधमंगल विधायक तथा हित चिन्तक महापुरुष के जीवन रूपक का यवनिका पतन हुआ। जगन्नाटक के सूत्रधार का अदृश्य संकेत पाकर वे असमय ही जीवन की रंगस्थली को छोड़कर नेपथ्य की ओर चले गये। मनु, याज्ञवल्क्य, व्यास और जैमिनि की प्रोज्ज्वल परम्पराओं का प्रस्तोता ऋषि अपनी इहलौकिक लीला का संवरण कर कीर्तिशेष हो गया।

(1860 ई० से 1863 ई० तक)

स्वामी विरजानन्द जी कौन हैं? पंजाब में कर्तारपुर के समीप गंगापुर नाम का एक ग्राम था, उसमें नारायणदत्त नाम का सारस्वत ब्राह्मण रहता था। दयानन्द के गुरु श्री विरजानन्द दण्डी ने उसी के घर जन्म लिया था। बचपन से ही बालक पर आपत्तियों का आक्रमण हुआ। 5 वर्ष की आयु में चेचक ने चाम की आंखें शक्तिहीन कर दीं और 12वें वर्ष में बालक के माता-पिता होनहार बच्चे को अनाथ छोड़कर परलोक की यात्रा कर गए। बालक के पालन-पोषण का बोझ बड़े भाई के कंधों पर पड़ा। बड़ा भाई साधारण दुनियादार भाइयों की भांति नासमझ था। वह एक अन्धे अतएव अनुपयोगी भाई की पेट-पालना में कोई विशेष लाभ नहीं देखता था। भाई और भावज की कृपा से तंग आकर शीघ्र ही बालक को घर छोड़ना पड़ा।

घर से भाग कर प्रतिभाशाली युवक ऋषिकेश और हरिद्वार में पंधुचा और वर्षों तक विद्याध्ययन तथा तपश्चर्या द्वारा अपनी आत्मा को संस्कृत करता रहा। हरद्वार में ही स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती की दया से उसे संन्यास मिला। संन्यासी विरजानन्द विद्या की तलाश में हरद्वार, कनखल, काशी, गया आदि में चिरकाल तक घूमते रहे और विद्वानों से व्याकरण तथा अन्य शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। अमृत के प्यासे ऋषि दयानन्द का गुरु बनने का अधिकार उसी तपस्वी को हो सकता था, जिसने एक उद्देश्य के लिए तपस्या की हो तथा किसी उत्तम पदार्थ की खोज में कोने-कोने छान मारे हों। इस दृष्टि से देखें तो स्वामी विरजानन्द जी ऋषि के गुरु बनने के पूर्णतया अधिकारी थे।

विद्याध्ययन कर लेने पर दण्डी जी ने विद्यार्थियों को पढ़ाना आरम्भ किया। उनके यश का विस्तार चारों ओर होने लगा। विशेषकर व्याकरण में उनका पाण्डित्य बहुत ऊंचे दर्जे का समझा जाता था। उनके पाण्डित्य और मधुर श्लोक-गान से प्रसन्न होकर अलवर के राजा ने बहुत दिनों तक उन्हें अपने यहां रखा। राजा की प्रार्थना पर दण्डी जी यह शर्त करके अलवर गए थे कि प्रतिदिन राजा 3 घंटे तक अध्ययन किया करेगा। विलासी राजा अपने प्रण को निभा न सका परन्तु संन्यासी ने अपना प्रण निभाया। जिस दिन राजा पढ़ने नहीं आया, उससे अगले दिन दण्डी जी का आसन अलवर से उठ गया।

कुछ समय रजवाडों में बिताकर स्वामी विरजानन्द जी ने मथुरा में अपना आसन जमाया। व्याकरण पढ़ने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थी दूर-दूर से, यहां तक कि काशी से भी दण्डी जी के पास आते थे। व्याकरण में दण्डी जी का पाण्डित्य अपूर्व हो गया था। इस समय उनके जीवन में एक विशेष परिवर्तन करने वाली घटना घटित हुई। पड़ोस में एक दक्षिणी पण्डित रहता था। वह प्रतिदिन मूल अष्टाध्यायी का पाठ किया करता था। दण्डी जी उस समय तक सिद्धान्तकौमुदी, मनोरमा और शेखर को ही व्याकरण का आदि और अन्त समझते थे। मूल अष्टाध्यायी का पाठ सुनकर मानो उनकी आंखें खुल गईं। उन्हें प्रतीत हुआ कि व्याकरण का ऋषिनिर्णीत क्रम कुछ और ही है। अष्टाध्यायी के सूत्रक्रम को देखते ही उनके हृदय में धारणा हो गई कि कौमुदीकार का बनाया हुआ क्रम अस्वाभाविक है और अष्टाध्यायी के महत्व को कम करने वाला है। यह

धारणा होते ही दण्डी जी ने दीक्षित के ग्रन्थों का और उनके साथ ही अन्य सब अर्वाचीन व्याकरण के ग्रन्थों का त्याग कर दिया। जनश्रुति है कि उनका यमुना में प्रवाह कर दिया। अष्टाध्यायी का क्रम दण्डी जी को इतना पसन्द आया कि उन्होंने अपने शिष्यों के पास जितने अर्वाचीन ग्रन्थ थे, वे फेंकवा या जलवा दिए। अष्टाध्यायी और महाभाष्य बस इन दो को हृदय के आसन पर बिठा लिया।

क्रिया-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त संसार में सभी जगह पाया जाता है। पानी एक ओर को बह रहा है। सामने पहाड़ की भारी चट्टान आ जाती है। पानी उल्टे पांव भागता है। उसके उल्टे भागने का वेग आगे बढ़ने के वेग के अनुपात से होगा। यदि पानी धीमी गति से आगे बढ़ रहा था तो धीमी चाल से ही पीछे को लौटेगा, परन्तु यदि जल का प्रवाह वेगवान् था तो उसकी ठोकर भी जोर की लगेगी। दण्डी जी के विचार-प्रवाह में भी जोर की ठोकर लगी। वे कौमुदी, मनोरमा और शेखर के प्रवाह में बड़े वेग से बहे जा रहे थे। अष्टाध्यायी का मूल सूत्रक्रम सुनकर और उसका सरल सौन्दर्य देखकर प्रज्ञाचक्षु की आंखें खुल गईं। उन्हें भान होने लगा कि ऋषिकृत व्याकरण का क्रम कौमुदी के गढ़े हुए क्रम से बहुत उत्कृष्ट है। इतना उत्तम होते हुए भी सूत्रक्रम गुम क्यों हो गया? व्याकरण का पठन-पाठन अष्टाध्यायी के क्रम में क्यों नहीं होता? कारण यही प्रतीत होता था कि भट्टोजी दीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी बनाकर सूत्रक्रम को पीछे फेंक दिया। इससे दण्डीजी का सारा असन्तोष भट्टोजी दीक्षित पर केन्द्रित हो गया। अष्टाध्यायी और महाभाष्य से उनका प्रेम ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता था, भट्टोजी दीक्षित से त्यों-त्यों उन्हें घृणा होती जाती थी। धीरे-धीरे उनके हृदय में यह निश्चय हो गया कि जब तक कौमुदी और उससे सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों को प्रचार नहीं रूक जाता, तब तक व्याकरण की ऋषिकृत-पद्धति का उद्धार नहीं हो सकता। यह विचार दण्डी जी के मन में समा गया, उनके दिल पर सवार हो गया। यही विचार दिन का चिन्तन और रात का सपना हो गया।

एक बार जयपुर के राजा रामसिंह ने दण्डी जी को दरबार में बुलाकर अपने यशस्वी होने का उपाय पूछा। ऋषिकृत ग्रन्थों के भक्त दण्डी जी ने उत्तर में यह आदेश किया कि एक बड़ी सभा करके देशभर के विद्वानों को एकत्र करो। सभा में इस विषय पर शास्त्रार्थ हो कि व्याकरण का ऋषिकृत क्रम अच्छा है या कौमुदी का? दण्डी जी ने कहा कि मैं उस सभा में सिद्ध करके दिखा दूंगा कि ऋषिकृत क्रम ठीक है और कौमुदी आदि ग्रन्थ अशुद्धियों से भरपूर है।

दूसरे एक अवसर पर मथुरा के कलेक्टर मि.पोस्टली दण्डी जी से मिलने आये। मि. पोस्टली ने सभ्यता के तौर पर पूछा- “ आप क्या चाहते हैं, जो हम कर सकें ? ”

दण्डी जी ने उत्तर दिया कि यदि आप हमारी इच्छा पूरी करना चाहते हैं, तो भट्टोजी दीक्षित के सब ग्रन्थों को इकट्ठा करके जलवा दें। यह भी प्रसिद्ध है कि दण्डी जी दीक्षित जी के ग्रन्थों पर शिष्यों के हाथों से जूते लगवाया करते थे।

क्या यह उचित था? अष्टाध्यायी या कौमुदी के सम्बन्ध में स्वतन्त्र सम्मति रखना दण्डी जी के लिए सर्वथा उचित था। यह उनका अधिकार था। ग्रन्थों की उपयोगिता तथा अनुपयोगिता के विषय में स्वतन्त्र सम्मति रखने का विद्वानों को पूरा अधिकार है। हम यह भी नहीं कह सकते कि उनकी सम्मति निर्मूल थी, अष्टाध्यायी की पद्धति का निर्माण पाणिनि मुनि ने किया है। सूत्रों का क्रम अष्टाध्यायी का जीवन है। यदि क्रम की उपेक्षा

कर दी जाय तो सूत्र व्यर्थ है। अनुवृत्ति असम्भव हो जाती है। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' बिलकुल व्यर्थ हो जाता है, और 'पूर्वत्रासिद्धम्' का कुछ बल ही नहीं रहता। अष्टाध्यायी के सूत्रों का इतना लघुकाय होना क्रम पर ही आश्रित है। उसका सौन्दर्य, उसका गौरव, बहुत कुछ क्रम पर अवलम्बित है। क्रम को छोड़कर यदि सूत्रों को कार्य में लाया जाय, तो अनुवृत्ति के लिए स्मृति पर बोझ डालना पड़ता है। 'परं कार्यम्' और असिद्धम् का तो अनुमान मात्र लगाया जा सकता है क्योंकि जो आदमी संस्कृत व्याकरण का विद्वान् बनना चाहे, वह यदि सिद्धान्तकौमुदी को साद्यन्त पढ़ जाये तो भी सूत्रक्रम के परिचित हुए बिना सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा। अष्टाध्यायी और उसके सूत्रों का अटूट सम्बन्ध है।

मुनि विरजानन्द ने देखा कि लोग सिद्धान्तकौमुदी को पढ़कर सूत्रक्रम की उपेक्षा करते हैं। भट्टोजी दीक्षित के देखने में सरल परन्तु वस्तुतः दुर्गम ग्रन्थ ने ऋषिकृत व्याकरण का लोप कर दिया है। उनकी अन्तरात्मा इससे खिन्न होकर प्रचलित पद्धति के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए खड़ी हो गई। विद्रोह के समय प्रायः सीमा का उल्लंघन हो जाता है। दण्डी जी के क्षोभ ने भी जब उग्र रूप धारण किया तब मर्यादा का अतिक्रमण कर दिया, इसमें संदेह नहीं। ग्रन्थ को नदी में बहाने से कभी उसका लोप नहीं हुआ और न कभी जूतों या पांव के तले रोंदने से उसका प्रचार रूका है। परिणाम प्रायः उल्टा ही होता है। आज भारत भूमि में सिद्धान्तकौमुदी की छपी हुई प्रतियां शायद दण्डी जी के समय की उपेक्षा बहुत अधिक हों परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि दण्डी जी का प्रयत्न व्यर्थ गया। जिस सत्य का अनुभव उन्होंने किया और अपने शिष्यों को कराया, उसे देश के एक बड़े भाग ने अंगीकार कर लिया है। आज सूत्रक्रम पर श्रद्धा रखने वाले विद्वानों की संख्या और मूल अष्टाध्यायी की प्रकाशित प्रतियों की संख्या भी दण्डी जी के समय से बहुत अधिक है। सत्य ने अपना प्रभाव उत्पन्न किया है, उसकी सहायता में यदि कहीं सीमा का उल्लंघन हो गया था, तो वह फल का महत्व देखते हुए अब विस्मरण करने योग्य है। जहां एक ओर उसका अनुकरण अवांछनीय है, वहां दूसरी ओर बारंबार उसे दोहराकर शिकायत करना बुद्धिमत्ता में शामिल नहीं है।

अस्तु, ऐसे दण्डी विरजानन्द जी थे, जिनके द्वार पर कार्तिक सुदी 2 सम्वत् 1917 (14 नवम्बर 1860) के दिन स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जाकर आवाज दी। परिचय हो जाने पर दण्डी जी ने पूछा—“क्या कुछ व्याकरण पढ़ा है?” दयानन्द ने उत्तर दिया—“सारस्वत पढ़ा हूं।” इस पर आज्ञा हुई—“पहले सब अनार्ष ग्रन्थ यमुना में बहा आओ तब आर्ष ग्रन्थ पढ़ने के अधिकारी हो सकोगे।” दयानन्द ने आज्ञा का पालन किया और योग्य गुरु के चरणों में बैठकर विद्यामृत-पान का यत्न आरम्भ किया।

स्वामी जी का विद्यार्थी-जीवन अनुकरणीय था। प्रातःकाल उठकर नित्यकर्मों से निवृत्त होकर पहले गुरु के लिए नदी से जल लाते थे, फिर अपने सन्ध्योपासन के पीछे पढ़ने में लग जाते थे। प्रातःकाल कुछ चने चबा लेते थे, जो उन्हें दुर्गा खत्री की कृपा से प्राप्त होते थे। मथुरा के बहुत-से विद्यार्थियों के भोजन का प्रबन्ध बाबा अमरलाल जोशी की ओर से था, स्वामी जी के भोजन प्रबन्ध भी वहीं पर था। रात्रि के समय भी सोने से पहले कुछ-न-कुछ अभ्यास किया करते थे, जिसके लिए तेल या मासिक खर्च 4 आने लाला गोवर्धन सर्राफ से प्राप्त होता था। इसी प्रकार उदार महानुभवों की सहायता से आवश्यकताएं पूरी हो जाती थीं, और शिष्य को गुरु-सेवा करते हुए विद्याभ्यास करने का खुला अवसर मिलता था। (क्रमशः)

गतांक से आगे

क्या महाभारत युद्ध को रोका नहीं जा सकता था?

(श्री सत्यानन्द वेदवागीश की पुस्तक से साभार)

द्रोणाचार्य भी अश्वत्थामा को चंचलमति और असत्यथगामी मानते थे-

‘वही परमास्त्र उन्होंने प्रसन्न होकर अर्जुन को भी दिया है। अश्वत्थामा बड़ा असहनशील है। उसने तो अकेले ही अपने आपको ही (=ब्रह्मास्त्र) को सिखाने की प्रार्थना की थी। आचार्य इसकी चपलता ताड़ गये थे और उन्होंने इसे यह आदेश दिया, कि ‘बेटे! बहुत बड़ी आपत्ति में पड़ जाने पर भी तुम इसका प्रयोग मत करना, विशेषतः मनुष्यों पर तो इसे छोड़ना ही मत; क्योंकि मैं देखता हूँ, तुम सत्पुरुषों के मार्ग पर स्थिर रहने वाले नहीं हों’।

अश्वत्थामा की बुद्धि के चञ्चलमतित्व और असत् पुरुषों के अनुकरण का ही परिणाम था, कि उसने क्रोध में भर कर उल्लू-कृत्य का अनुसरण किया, जब कि वह युद्ध के बीच में ही दुर्योधन से लड़ाई रोकने और पाण्डवों के साथ सन्धि करके शान्त जीवन जीने की नेक सलाह दे चुका था-

‘(हे धृतराष्ट्र!) तब (=कर्ण को सेनापति बनाने के समय) अश्वत्थामा ने दुर्योधन को सान्त्वना दिलाते हुए उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा- हे दुर्योधन! तुम प्रसन्न हो जाओ, शान्त होओ और पाण्डवों के साथ विरोध न करो। लड़ाई-झगड़े को धिक्कार है। महान् अस्त्रवेत्ता ब्रह्मा समान मेरे पिता द्रोणाचार्य मारे गये, तथा भीष्म पितामह आदि प्रमुख महारथी योद्धा भी मर चुके हैं। ... अब तुम पाण्डवों के साथ मिलकर चिरकाल तक राज्य करो। मेरे मना करने पर अर्जुन शान्त हो जायेगा। श्रीकृष्ण विरोध चाहते ही नहीं है। युधिष्ठिर तो सदा प्राणिमात्र के कल्याण की कामना वाले हैं। भीमसेन तथा नकुल-सहदेव युधिष्ठिर की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। तुम्हारे द्वारा पाण्डवों के साथ सन्धि कर लेने पर, प्रजाओं का कल्याण होगा। तुम अपनी इच्छा की दिशा बदलो। शेष बचे हुए बन्धुजन अपने-अपने नगरों को जावें और सभी सैनिक युद्धस्थली का त्याग कर दें। हे राजन्! यदि तुम मेरी बात अनुसूनी करोगे, तो निश्चय ही तुम युद्ध में शत्रुओं के द्वारा मारे जाओगे’।

‘तन्महात्मा महाभागः केतुः सर्वधनुष्मताम्। प्रत्यपादयदाचार्यः प्रीयमाणो धनञ्जयम्। तं पुत्रोऽप्येक एवैनमन्वयाचदमर्षणः। ततः प्रोवाच पुत्राय नातिहृष्टमना इव। विदितः चापलं ह्यासीदात्मजस्य दुरात्मनः। सर्वधर्मविदाचार्यः सोऽन्वशात् ततः सुतम्।। परमापदगतेनापि न स्म तात! त्वया रणे। इदमस्त्रं प्रयोक्तव्यं मानुषेषु विशेषतः। इत्युक्तवान् गुरुः पुत्रं द्रोणः पश्चादथोक्तवान्। न त्वं जातु सतां मार्गे स्थातेति पुरुषर्षभ’। (महाभा.सौ.१२.५-९)

‘अथाब्रवीद् द्रोणसुतस्तवात्मजं करं करेण प्रतिपीड्य सान्त्वयन्। प्रसीद दुर्योधन! शाम्य पाण्डवैरलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम्।। हतो गुरुर्ब्रह्मसमो महास्त्रवित् तथैव भीष्म-प्रमुखा महारथाः। अहं त्ववध्यो मम...धनञ्जयः शाम्यति वारितो मया जनार्दनो नैव विरोधमिच्छति। युधिष्ठिरो भूतहिते रतः सदा वृकोदरस्तद्वशगस्तथा यमौ।। त्वया तु पार्थैश्च कृते च संविदे प्रजाः शिवं प्राप्नुयुरिच्छया तव। व्रजन्तु शेषाः स्वपुराणि बान्धवा निवृत्तयुद्धाश्च भवन्तु सैनिकाः।। न चेद् वचः श्रोष्यसि मे नराधिप! ध्रुवं प्रतप्तासि हतोऽरिभिर्युधि’।। (महाभा.कर्ण.८८.२०-२४)

इतना ही नहीं, अश्वत्थामा आरम्भ से ही दुर्योधन-दल की कुनीतियों के विरुद्ध था। विराटराज की गौओं के हरण के समय युद्ध में भी उसने दुर्योधन और कर्ण से कहा था-

‘भला जुए से राज्य पाकर कौन क्षत्रिय सन्तुष्ट हो सकता है? परन्तु इस धृष्टराष्ट्रपुत्र दुर्योधन को इसी में सन्तोष है; क्योंकि यह क्रूर निर्दयी है। जैसे शिकारी शठता और छलकपट से भरे हुए उपायों द्वारा जीवन-निर्वाह करता है, वैसे ही कपटपूर्ण वृत्ति से धन पाकर कौन बुद्धिमान् पुरुष अपने ही मुँह अपनी बड़ाई करेगा? दुर्योधन! तुमने जिन पाण्डवों का धन, कपटद्यूत के द्वारा हर लिया है उनमें से धनञ्जय, नकुल या सहदेव किसको कब युद्ध में हराया है? वह कौनसा द्वन्द्व युद्ध हुआ था, जिसमें तुमने अर्जुन आदि में से किसी को जीता हो?।। युधिष्ठिर अथवा भीमसेन तुम्हारे द्वारा किस युद्ध में परास्त किये गये हैं? आज जिस इन्द्रप्रस्थ पर तुम्हारा अधिकार है, उसे पहले तुमने किस युद्ध में जीता था?।। हे दुष्ट कर्म करने वाले पापी? बताओ तो, कौनसा ऐसा युद्ध हुआ था, जिसमें तुमने द्रोपदी को जीत लिया हो? तुम लोग तो अकारण ही एकवस्त्रा बेचारी द्रोपदी को रजस्वलावस्था में सभा के भीतर घसीट लाये थे।।...। हम देखते हैं, मनुष्य हों या अन्य प्राणी; सबमें अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सहनशीलता की एक सीमा होती है। द्रौपदी को जो कष्ट दिये गये हैं, उन्हें अर्जुन कभी सहन नहीं कर सकते। कष्ट देने वालों को क्षमा नहीं कर सकते।...। धर्मज्ञों का कहना है, कि गुरु को पुत्र के बाद शिष्य ही प्रिय होता है; इस कारण से भी अर्जुन ही द्रोणाचार्य को प्रिय हैं।। हे दुर्योधन! जैसे तुमने जुए का खेल किया, जिस तरह से तुमने इन्द्रप्रस्थ-राज्य का अपहरण किया और जैसे तुम भारी सभा में द्रौपदी को घसीट लाये, वैसे ही अर्जुन से युद्ध भी तुम्हीं करो।। जैसे तुमने अपने कपटद्यूती शकुनि मामा के सहारे जुए का खेल रचा, उसकी के सहारे अब युद्ध भी करो।। भले ही दूसरे योद्धा युद्ध करें, मैं अर्जुन से युद्ध नहीं करूँगा⁸।

इस प्रकार ज्ञात हुआ, कि अश्वत्थामा युद्ध से पहले और युद्ध के मध्य में भी दुर्योधन द्वारा अपनाये गये नृशंस कार्यों के विरुद्ध था। यहाँ तक कि अपने पिता द्रोण के मर जाने पर भी इतना क्षुब्ध नहीं हुआ।

⁸ ‘प्राप्य द्यूतेन को राज्यं क्षत्रियस्तोष्टुमर्हति। तथा नृशंसरूपोऽयं धार्तराष्ट्रो निर्धृणः।। तथाऽधिगम्य वित्तानि को विकत्थेद् विचक्षणः। निकृत्या वञ्चनायोगैश्चरन् वैतंसिको यथा। कतमद् द्वैतं युद्धं यत्राजैषीर्धनञ्जयम्। नकुलं सहदेवं वा धनं येषां त्वया हतम्।। युधिष्ठिरो जितः कस्मिन् भीमश्च बलिनां वरः। इन्द्रप्रस्थं त्वया कस्मिन् संग्रामे निर्जितं पुरा।। तथैव कतमद् युद्धं यस्मिन् कृष्णा जिता त्वया। एकवस्त्रा सभां नीता दुष्टकर्मन् रजस्वला।।...यथाशक्ति मनुष्याणां शममालक्षयामहे। अन्येषामपि सत्त्वानामपि कीटपिपीलकैः।। द्रौपद्याः सम्परिक्लेशं न क्षन्तुं पाण्डवोऽर्हति।।...पुत्रादनन्तरं शिष्य इति धर्मविदो विदुः। एतेनापि निमित्तेन प्रियो द्रोणस्य पाण्डवः।। यथा त्वमकरोर्धूतमिन्द्रप्रस्थं यथाऽऽहरः। यथाऽऽनैषीः सभां कृष्णां तथा युध्यस्व पाण्डवम्।।...दुर्धूतदेवी गान्धारः शकुनिर्युध्यतामिह।।...यथा सभायां द्यूतं त्वं मातुलेन सहाऽकरोः। तथा युध्यस्व संग्रामे सौबलेन सुरक्षितः।। युध्यन्तां कामतो योधा नाहं योत्स्ये धनञ्जयम्।।(महाभा. वि.५१.८-२८)

द्रोण के सिर काटने वाले धृष्टद्युम्न को भी उसने उस समय सहन कर लिया। क्योंकि पुत्र के मृत्यु का समाचार (झूठा) सुनकर, द्रोण ने योगविधि से स्वतः प्राण त्याग दिये थे। तब निष्प्राण द्रोण के शरीर के सिर को धृष्टद्युम्न ने काटा था। उसी अश्वत्थामा ने उल्लू को देखकर आपा खोकर कुकृत्य किया।

महाभारत युद्ध में मारे गये नरवीरों और प्राणियों की संख्या

‘धृतराष्ट्र ने...युधिष्ठिर से पूछा, ‘युधिष्ठिर! इस युद्ध में जो सेनाएं मारी गई हैं, उनके परिमाण का तुम्हें पता हो, तो हमें बताओ’ युधिष्ठिर ने कहा-महाराज! इस युद्ध में एक अरब, छसठ करोड़, बीस हजार वीर मारे गये हैं। इनके सिवा चौदह हजार योद्धा अज्ञात हैं और दस हजार एक सौ पैंसठ अन्य वीरों का भी पता नहीं है’⁹।

इस कथन को अतिशयोक्तिपूर्ण भी मानें, तो भी अक्षौहिणी के परिमाण से भी कुल ४७,२३,९२० सैंतालीस लाख, तेईस हजार, नौ सौ बीस नर वीर, ९,९६,३०० नौ लाख, छियानवें हजार, तीन सौ घोड़े और ३,४५,०६० तीन लाख, पैंतालीस हजार, साठ हाथी, इतने ये अठारह अक्षौहिणी सेना में थे। क्योंकि एक अक्षौहिणी में २,६२,४४० पुरुष (=१०९३५० पदाति+४३७४० रथी योद्धा और सारथि + ४३७४० गजयोद्धा और महावत+६५६१० घुड़सवार थे। इनको अठारह से गुणा करने पर ४७,२३,९२० पुरुष होते हैं। घोड़ों और हाथियों की संख्या ऊपर दी हुई है¹⁰।

अठारह अक्षौहिणी सेना के ४७,२३,९२० नरवीरों में से कुल बारह नरवीर (=पांच पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, युयुत्स, धृष्टद्युम्नसारथि; अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा) बचे। अर्थात् ४७,२३,९२० योद्धाओं का वीरों का वध हो गया। परिणामस्वरूप आधा करोड़ स्त्रियाँ विधवा हो गईं। करोड़ों बच्चे अनाथ हो गये और १३,४१,३६० तेरह लाख, इकतालीस हजार, तीन सौ साठ हाथी घोड़े जो कि सर्वथा निरपराध थे, मृत्यु का ग्रास बने। रथ-वाहनादि की भौतिक क्षति भी बहुत अधिक हुई। वातावरण भी अत्याधिक प्रदूषित हुआ।

⁹ ‘जीवतां परिमाणज्ञः सैन्यानामसि पाण्डव! हतानां यदि जानीषे परिमाणं वदस्व मे।। युधिष्ठिर उवाच-दशायुतानामयुतं सहस्राणि च विंशतिः। कोट्य षष्टिश्च षट् चैव ह्यस्मिन् राजन् मृधे हताः।। अलक्षितानां वीराणां सहस्राणि चतुर्दश। दश चान्यानि राजेन्द्र! शतं षष्टिश्च पञ्च च।। (महाभा.स्त्री.२६.८-१०)

¹⁰ ‘अक्षौहिण्याः प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः। संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः।। शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः। गजानां च परीमाणमेतदेव विनिर्दिशेत्।। ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि तथैव च। नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघाः। पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतावि च। दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह संख्यया।। एतामक्षैहिणीं प्राहुः संख्यातत्त्वविदो जनाः। यां वः कथितवानस्मि विस्तवानस्मि विस्तरेण तपोधनाः। एतया संख्यया ह्यासन् कुरुपाण्टवसेनयोः। अक्षौहिण्यो द्विजश्रेष्ठाः पिण्डताप्यादशैव तु।। समेतास्तत्र वै देशे तत्रैव निधनं। गताः। कौरवान् कारणं कृत्वा कालेनाद्भुतकर्मणा।। (महाभा. आदि. २.२३-२९)

श्रावणी पर्व कैसे मनाएं?

—प्रो. कैलाशनाथ सिंह

प्रिय आर्य-बन्धुओं!

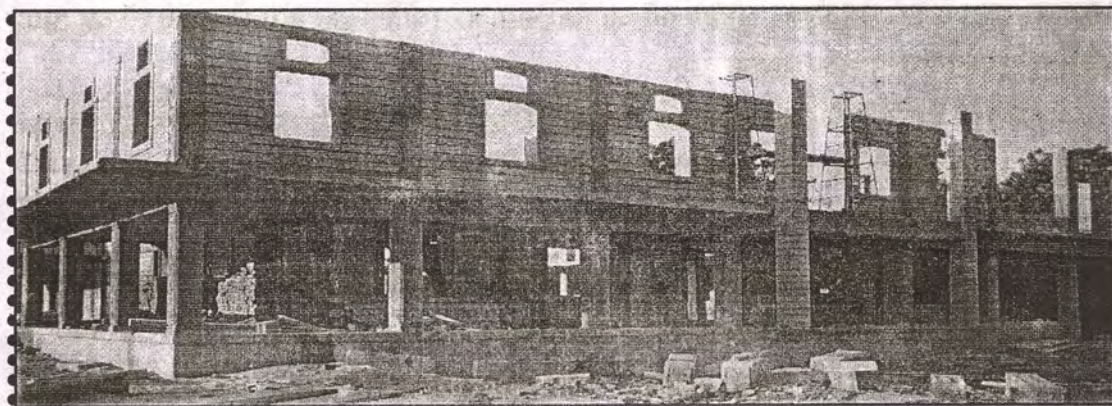
श्रावणी पर्व हम आर्यों का सनातन पर्व है जो वैदिक काल से चला आ रहा है। महाभारत-काल के उपरांत जब धार्मिक जगत् में अन्धकार युग का सूत्रपात हुआ तो सनातन परम्पराओं का स्थान ऊल-जलूल उपासना-पद्धतियों और विविध सम्प्रदायों ने ले लिया। महर्षि दयानन्द सरस्वती के आविर्भाव के साथ स्थिति ने पलटा खाया, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का शंखनाद हुआ, वेद की ओर लौटने का आह्वान हुआ तो श्रावणी पर्व को फिर से मनाने की परम्परा का पुनरुदय हुआ। इस पुण्य पर्व को हम कैसे मनायें कि वेद-ज्ञान की गंगा घर-घर पहुँचायी जा सके? जिस प्रकार अन्य कर्मकाण्डों में एकरूपता नहीं है वैसे ही पर्वों के मनाने में भी हम एकरूपता स्थापित नहीं कर सके जिससे ये सभी संस्कार प्रभावशाली नहीं हो पाये। श्रावणी पर्व को यदि हम अनुशासनबद्ध होकर मनायें तो उसका अलग ही प्रभाव समाज पर पड़ेगा।

इस वर्ष रक्षाबन्धन 18 अगस्त 2016 (गुरुवार) और श्रीकृष्ण जन्माष्टमी 25 अगस्त 2016 (गुरुवार) का है। इन दोनों पर्वों के बीच का सप्ताह ही श्रावणी पर्व अर्थात् वेद प्रचार सप्ताह के रूप में मनाया जाता है इस वेद प्रचार सप्ताह को आपका समाज अधोलिखित रूप में मनाये तो वह अपने उद्देश्य में अपेक्षाकृत अधिक सार्थक होगा—

- प्रातः 4.00 बजे से 6.00 बजे तक आप अपने नगर में प्रभात फेरी का आयोजन करें। भजन, आर्यसमाज के प्रचलित समाघोष, साहित्य वितरण किसी भी ऋषि-भक्त द्वारा 15 मिनट का जलपान इस दौरान कराया जाये।
- प्रातः 6.00 बजे से 8.00 बजे तक आर्यसमाज, पार्क अथवा किसी सार्वजनिक स्थान पर दैनिक बृहद यज्ञ का आयोजन किया जाये और वेद प्रचार का कार्यक्रम रखा जाये।
- सायं 4.00 बजे से 5.00 बजे तक आर्य महिलाएँ बारी-बारी से परिवार बदलते हुए पारिवारिक यज्ञ करें।
- आर्य भाई व बहन नये यज्ञोपवीत धारण करें और जिन्होंने यह धारण नहीं किया है वे भी धारण करें।
- यज्ञ में अधिक से अधिक उन भाई-बहनों को भी आमंत्रित करें जो आर्य समाजी नहीं हैं। प्रयास करें कि आर्य समाज के लिए अधिक से अधिक नये सदस्य इस अवसर पर बनाये जायें।
- यज्ञ के दौरान आर्य उपदेशकों और स्वाध्यायशील महानुभावों के वेद-विषयक प्रवचन

अवश्य कराये जायें और धर्म के नाम पर जो पाखण्ड, गुरुडम, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता, रूढ़ियाँ फैलाई जा रही हैं उनका जोरदार खण्डन हो।

- हम हिन्दू नहीं आर्य हैं अतः आर्यत्व को लेकर अधिक से अधिक जागरूकता इस अवसर पर प्रकट होनी चाहिए और 'हिन्दुत्व' की फुसफुसियाँ अवधारणा का प्रत्याख्यान होना चाहिए।
- रात्रि के समय आर्य समाज में सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन हेतु गोष्ठियों का आयोजन होना चाहिए। चर्चित विषयों में सप्त-क्रान्ति के सात मुद्दे-जातिवाद, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, नशाखोरी, नारी उत्पीड़न, शोषण और पाखण्ड रखे जा सकते हैं।
- वेद विषयक साहित्य का निःशुल्क वितरण इस अवसर पर यथा-सामर्थ्य अवश्य किया जाना चाहिए और विशेषतः नगर के प्रतिष्ठित महानुभावों अध्यापकों, वकीलों, उच्चाधिकारियों और नेताओं तक वेद, महर्षि दयानन्द और आर्य समाज का संदेश अनिवार्य रूप से जाना चाहिए। आर्यसमाज की क्या-क्या विशेष उपलब्धियाँ रही हैं यह भी जानकारी दी जानी चाहिए।
- श्रावणी पर्व आत्म-मंथन और आत्मोत्थान का पर्व है। अतः इस स्वाध्याय, आध्यात्मिक साधना और किसी नये संकल्प के साथ मनायें और विचार करें कि महर्षि दयानन्द के मिशन को आगे बढ़ाने के लिए हम किस रूप में आर्य समाज की सेवा कर सकते हैं।



निर्माणाधीन भवन

आप सभी आर्य बन्धुओं को सूचित करते हैं कि दयानन्द स्मृति भवन न्यास जोधपुर में निर्माणाधीन भवन में अपने सगे-सम्बन्धी एवं परिवार जन की यादगार में जो कोई भी कमरे बनवाने के इच्छुक हो तो दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर रातानाड़ा, मोहनपुरा पुलिया आर्यसमाज में आकर पदाधिकारियों से सम्पर्क कर सकते हैं। कमरे की लागत मात्र 2,00,000 रुपये रखी गई है।

दयानन्द बावनी (श्री दुलेराय काराणी)

संन्यास

दूर देहाध्यास किया, सानन्द संन्यास लिया,

(००) तीव्र आत्मप्यास, वेदाभ्यास तैं बुझायके ;

भये मूलशंकर से दयानन्द सरस्वती,

योग की जगाई जौत हिमाद्रि को जाय के;

हिंसक पशुन बीच, काय को झुकाय दीनो,

आत्मवत् भूतेषु को प्रेममन्त्र पायके;

'काराणी' कहत, तप त्याग; ज्ञान, ध्यान हु से,

वृत्तियों को वश कीनो, तन को तपाय के (७)

गुरु शरण में

भारत की एक भव्य विभूति विरजानन्द,

गुरुवर—शरण में, दयानन्द आयो है ;

प्रज्ञाचक्षु गुरुजी को क्रोध स्वभाव सह्यो,

शिष्य को सुधर्म, सहिष्णुता अपनायो है;

'वेदधर्मोद्धारव्रत' दिया गुरुदक्षिणा में,

या ते गुरुराज ने अपार हर्ष पायो है;

'काराणी' कहत गुरुज्ञान से प्रकाशमान

देवदयानन्द ने, जगत में झुकायो है (८)

देश की दुर्दशा

भारतभूमि में, वेदधुनि न सुनाई कहीं,

(१०) सुना बाइबल, सुनाई आयतें कुरान की;

'ईसु'री ईमानदारी पादरी पडान लगे,

संग में सुनान लगीं, आवाजें अजान की;

'काराणी' कहत 'बोडीबामनी' को जैसों खेत,

वैसी दशा भई सारे देश हिन्दुस्तान की;

अधर्म का घोर अन्धकार देख-देख दया—

नन्द उठाई डोर, धर्म की कमान की (९)

अर्यावर्त में अनाचार

सारे आर्यावर्त में न आर्यत्व को रह्यो अंश,

(११) धर्मकर्म—ध्वंस को, अघोर काल आयो है;

आतंक उत्ताप अभिशाप के सन्ताप साथ,
 पाप को अमाप ताप, छिति पै छवायो है;
 नाचत निशाचर हय, राचत पिशाच प्रेत,
 दुराचार राज दुराचारियों को भायो है;
 नीतिरीति नेम हय न, बहेम हय विनाश वहाँ,
 प्रेम को प्रकाश, दयानन्द ने दिखायो है(१०)

ब्राह्मण

ब्राह्मणों ने कीनी ब्रह्मविद्या को विदेशपार,
 अविद्या अज्ञान को, अंधार जापै आयो है;
 विद्यादान, ध्यान—धर्म, ब्रह्म को न जान्यो मर्म,
 पाचकों को कर्म एक, विप्रमन भायो है;
 वेद को न लह्यो भेद, परस्पर भयो भेद,
 सीमंत—प्रेतान्न—श्राद्ध खंतहु से खायो है;
 नहिं नेक—टेक एकवर्ण में विवेक रेख,
 देखदेख दिल दयानन्द को दुखायो है (११).

क्षत्रिय

भारतभूमि के रणधीर राजपूत वीर,
 दुर्बल को रक्षक, वो भक्षक सो आयो है;
 एक मुक्ति काज, लाख लाख बलिदान दिये,
 वो ही पराधीनता के, पिंजर पूरायो है;
 न्याय—नीति—नियम, नरेश में न रहे शेष,
 फेशन के फेर फेर फंद में फसायो है;
 नहीं नेक—टेक एक वर्ण में विवेक—रेख,
 देख देख दिल दयानन्द को दुखायो है;(१२)

वैश्य

ब्राह्मण—क्षत्रिय—शूद्र को आधार वही,
 वैश्य वर्ण मरण के चरण तक आयो है;
 वैश्य ने विसार दियो, वैश्य धर्म को विचार,
 वाको धर्म—कर्म सब, स्वार्थ में समायो है;
 कपटी कुटिल भयो, जीवन जटिल भयो,
 एक रक्तशोषण के, रंग में रंगायो है;
 नहीं नेक—टेक एक वर्ण में विवेक—रेख
 देख देख दिल दयानन्द को दुखायो है (१३)

(क्रमशः)

स्वामी दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास जोधपुर के वार्षिक सम्मेलन

सूचना

आर्यजनों को यह जानकर हर्ष होगा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास जोधपुर का वार्षिक उत्सव हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी 29-30 सितम्बर से 1-2 अक्टूबर 2016 को मनाने एवं कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु सभी पदाधिकारीगण एवं सदस्यगण अपनी योजनाओं को मूर्त रूप देकर अपने विचार व्यक्त कर काफी उत्साहित हैं। वेद प्रचार उत्सव में आर्य जगत् की कई विभूतियाँ- एवं विद्वत्जन अपने सारगर्भित वेद-प्रवचनों के द्वारा हमारा मार्ग दर्शन करेंगे। भजनोपदेशों की संगीतमयी सरिता बहाने के लिए हम सबके चिर परिचित हृदय सम्राट को भी बुलाने की व्यवस्था की गई है। इनके साथ-साथ आर्य जगत् के सभी संन्यासियों व महात्माओं को भी सादर आमंत्रण भेजा जा रहा है। आप सभी से अनुरोध है कि आप अपने परिजनों व इष्ट मित्रों सहित पधारकर धर्म लाभ प्राप्त करेंगे। श्री सत्यानन्द वेदवांगीशजी स्मृति भवन न्यास में विराजमान हैं कृपया आप अपनी किसी भी प्रकार की धर्म चर्चा या अपनी समस्या के निदान हेतु उनसे सम्पर्क कर धर्म लाभ उठा सकते हैं।

हमारा पूरा प्रयास रहेगा कि इस उत्सव को सच्चे अर्थों में वेद प्रचार का प्रभावकारी अभियान बनायें। वैदिक सिद्धान्तों का व्यावहारिक उपदेश हम सबको मिले और हम भी अपनी ज्ञान-पिपासा (जानने की इच्छा) को लेकर उत्सव में होने वाली धर्म चर्चा का पूरा लाभ उठायें। कार्यक्रम की विस्तृत व समयबद्ध जानकारी आपको शीघ्र ही भेज दी जाएगी। आशा ही नहीं हमें पूर्ण विश्वास है कि आप सब आर्य जन अपने परिवार व मित्रों के साथ पधारकर जीवन को वैदिक सिद्धान्तों के अनुरूप बनाने का सच्चा प्रयास करेंगे।

आमन्त्रित विद्वत्गण-यज्ञ के ब्रह्म आचार्य श्री सत्यानन्दजी वेदवांगीश
वेद प्रवक्ता- आचार्य श्री रामपालजी, पं. श्री रामनारायणजी शास्त्री
भजनोपदेशिका-बहन अन्जली आर्या, एवं श्री दिनेश दत्तजी

निवेदक

विजयसिंह भाटी

प्रधान

आर्य किशनलाल

मंत्री

जयसिंह आर्य पालड़ी

कोषाध्यक्ष

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति न्यास के समस्त पदाधिकारी एवं सदस्यगण

आर्य समाज मन्दिर महर्षि पाणिनि नगर जोधपुर में वृहद् वृष्टि यज्ञ एवं वार्षिकोत्सव सम्पन्न

आर्य समाज मन्दिर, महर्षि पाणिनि नगर पूजला जोधपुर के तत्वावधान में 24 जुलाई से 2 अगस्त, 2016 10 दिवसिय वृष्टि यज्ञ व वार्षिकोत्सव मनाया गया। पं. भवदेव जी शास्त्री के ब्रह्मत्व के द्वारा प्रातः-5.30 से 7.00 बजे तक योग व प्राणायाम करवाया गया तथा 8.00 बजे से 10.30 बजे तक यज्ञ व भजन, प्रवचन का कार्यक्रम दोपहर 2.30 से 5.00 बजे तक व शाम 8.00 बजे से 10.00 बजे तक 4 सत्र में आयोजित था तथा साथ में बिहार से पधारी ऋचा योगमयी द्वारा देश भक्ति गीत, वर्तमान में आर्य समाज की भूमिका व ईश्वर के गीतों से सभी को मंत्र मुग्ध कर दिया। दो दिन आचार्य कपिलजी द्वारा आर्य समाज की मानताएँ क्या हैं उस पर अपने उद्बोधन द्वारा सभी सरल भाषा में समझाया। 31 जुलाई को पधारे जोधपुर सांसद गजेन्द्रसिंह राठौड़ का आर्य समाज के प्रधान गजेन्द्रसिंह, मदनजी तंवर व सोहनसिंह जी द्वारा अभिनन्द किया गया। सांसद ने कहा कि पूर्वजों के द्वारा विरासत में मिली शुद्ध पर्यावरण यदि हमने इसकी सुरक्षा नहीं की तो उसका बुरा परिणाम हमें भुगतना पड़ेगा। यज्ञ ही एक ऐसा माध्यम है जिसे पर्यावरण का संरक्षण कर सकते हैं जिससे वर्षा भी अच्छी होगी और महर्षि दयानन्द के उपकारों के बारे में बताया।

2 अगस्त, वृहद् वृष्टि यज्ञ हरियाली अमावस्या की पूर्णाहुति के शुभ अवसर पर पं. भवदेवजी शास्त्री, आचार्य कपिलजी एवं ऋचा योगमयी के सानिध्य में सम्पन्न हुआ। शास्त्री जी ने कहा की प्रत्येक व्यक्ति को पंचयज्ञ करना चाहिए महर्षि दयानन्दजी ने इस पर पूरा जोर दिया। इस शुभ अवसर पर पधारे श्री महेन्द्र सिंह राठौड़ चैयरमैन (जे.डी.ए) का समाज के द्वारा अभिनन्दन किया गया। तथा समाज सेवी नरेन्द्र सिंह कच्छवाहा एवं किशोर सिंह टाक (पार्षद), चन्द्रकान्ता जी भाटी की उपस्थिति में समाज सेवीयों व कार्यकर्ताओं का सम्मान किया गया। प्रॉ. महेन्द्र सिंह राठौड़ ने कहा कि प्रत्येक परिवार में यज्ञ होना चाहिए मैं भी अपने परिवार के साथ गायत्री मंत्र से यज्ञ करता हूँ वर्तमान में प्रदुषण बहुत अधिक हो गया है जिससे प्रकृति असन्तुलित हो रही है। बहार से पधारे अतिथियों का स्वागत किया गया। अगले वर्ष यज्ञ शाला का उद्घाटन किया जायेगा जो यज्ञ शाला के निमित्त 11000 रु देगे उसका नाम पटिका पर लिखा जायेगा। कार्यक्रम का संचालन शिवराम आर्य ने किया तथा प्रधान गजेन्द्र सिंह सांखला व संयोजक करणसिंह भाटी ने पधारे हुए लोगों का धन्यवाद ज्ञापित किया गया। सवाईसिंह, मदनजी, दाऊलाल जी, सोहनसिंह, धीरेन्द्र भाटी मंत्री, दाऊलालजी, चेतनप्रकाश, रमेशजी, नरेन्द्र आर्य, कैलाश चन्द्र आर्य, लिखमाराम, महेश परिहार, किशनजी, बलसा, श्रीमति संतोष, आर्या, पृथ्वीसिंह टाक, सरोज भाटी, रुपवती देवड़ा, अदिति आर्य, अभिषेक, रविना, वन्दना, अशोक, देवीलाल, कैलाश, पंकज, गौरव सोनी, गजेन्द्र जी, रामरतन, राजूसा, नारायण, सज्जनसिंह, ब्रह्मसिंह, किशनजी इत्यादि कार्यकर्ताओं का विशेष सहयोग रहा।

करणसिंह भाटी
संयोजक

वृहद वृष्टि यज्ञ एवं वार्षिकोत्सव में पधारे भाजपा सांसद गजेन्द्रसिंह जी
एवं जे डी ए चेयरमैन श्री महेन्द्रसिंह राठौड़ व भामाशाओं का सम्मान करते हुए



लायन्स क्लब के तत्वाधान में महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास में वृक्षारोपण कार्यक्रम की प्रमुख झलकियां



सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरु हाऊस जोधपुर फोन 9829392411 से मुद्रित ।

सम्पादक फोन नं. 0291-2516655

